शिष्टाचार

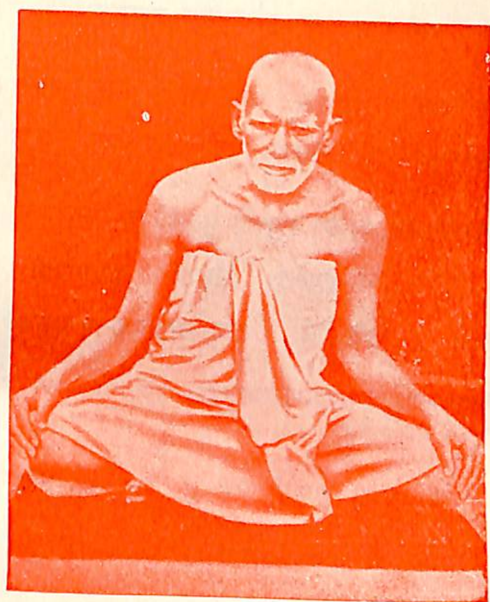
सन्तराम

श्वरानन्द संस्थान प्रकाशन
होशियारपुर

विश्वेश्वरानन्द-संस्थान-प्रकाशन—१६४

सर्वदानन्द-विश्व-ग्रन्थमाला
SARVADANAND UNIVERSAL SERIES

स्वर्गत (The Late)



श्रीमान् स्वामी सर्वदानन्द
Shri Swami Sarvadanand

सं. १९१६-९९ (1859-1942)

ग्रन्थ—२९
Volume—29

ग्रन्थमाला-स्मारक-समर्पण-संकल्पः

★ पञ्चापे लब्धजन्माऽऽसीद्व होश्यारपुर-पार्श्वतः ।
महात्मा *सर्वदानन्दस्* सिद्ध-तपा यतीश्वरः ॥ १ ॥

★ वेद–वेदाङ्ग–सच्छ्रद्धो वेदान्त-शान्त-मानसः ।
सत्यधर्म–प्रचारात्म–लोकसेवा–दृढव्रतः ॥ २ ॥

★ सत्प्रेरणाभिराशीभिर् यः खलु मुनि-सत्तमः ।
अस्माकं सर्वदा मान्यः *संस्थानस्या*ऽस्य पोषकः ॥ ३ ॥

★ तस्याऽस्तु सुचिर-स्मृत्यै पूजायै च मनस्विनः ।
सद्ग्रन्थ-विश्व-मालेयं श्रद्धया परयाऽर्पिता ।
इति निवेदयेते तत्-*सम्पादक-प्रकाशकौ* ॥ ४ ॥

सम्पादक :—

विश्वबन्धु *शास्त्री, एम. ए., एम. ओ. एल.*

प्रकाशक :—

विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-संस्थान
होशियारपुर

स. वि. ग्रन्थमाला—२९



S. U. Series—29

शिष्टाचार

लेखक
सन्तराम, बी. ए.

होशियारपुर
विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान
१९५९

प्रथम संस्करण
२०१६ (1959)
मूल्य २) रु. 30



Printed at
The V. V. R. Institute Press
and Published for
The V. V. Research Institute
By
DEV DATTA Shastri, V. B.,
at Hoshiarpur (India)

प्रकाशक तथा मुद्रक
देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर
विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोध-संस्थान
प्रैस, साधुआश्रम, होशियारपुर
(भारत)

दो शब्द

मनुष्य-समाज भी एक मशीन के सदृश है। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, अड़ोसी-पड़ोसी और मित्र-सुहृद् आदि सब इस मशीन के पुरज़े हैं। लोहे की मशीन की भाँति इस सामाजिक-मशीन के पुरज़ों को भी, रगड़ से बचाने के लिए तेल देने की आवश्यकता होती है। वह तेल है सद्व्यवहार। जिस व्यक्ति को सद्व्यवहार आता है वह न केवल अपने जीवन को ही, वरन् दूसरों के जीवनों को भी सुखी तथा सुमधुर बना देता है। सद्व्यवहार रूपी तेल के अभाव में सारे समाज का जीवन कटु हो जाता है। सामाजिक-व्यवहार का ज्ञान करा कर पारिवारिक तथा लोक-जीवन को मधुर बनाने में सहायता देने के उद्देश्य से ही यह छोटी सी पुस्तक लिखी गई है। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तिका के अध्ययन और इसमें लिखी बातों पर आचरण करने से मानवी सम्बन्धों को पहले से अच्छा बनाने में अवश्य ही कुछ सहायता मिलेगी।

पुस्तक में लिखी गई बातों का आधार मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। इस लिए यह पुस्तक ऐसी नहीं जिसे कहानी या उपन्यास की भाँति एक वार पढ़ कर परे रख दिया जाए। दैनन्दिन-जीवन में इससे लाभ उठाने के लिए इसे बार बार पढ़ने की आवश्यकता है। जिन लोगों को ज्ञान-वृद्धि में रुचि है उन्हें यह पुस्तक मनोरंजक भी बहुत जान पड़ेगी। कलेवर में छोटी होने पर भी गुण की दृष्टि से यह बहुमूल्य है।

पुरानी बसी,
होशियारपुर

सन्त राम

विषय-सूची

शिष्टाचार

शिष्टाचार

१. बूढ़ों के साथ कैसे निभाएँ

बहुत अधिक साधु-प्रकृति के व्यक्ति भी कभी-कभी सोचने लगते हैं कि बड़े बूढ़ों के साथ रहना क्यों कठिन होता है। अमेरिका के विन्कोन्सिन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० ईर्विन ने इसका उत्तर दिया है। उनका कहना है कि प्रत्येक तीन में से दो बूढ़े यह अनुभव करते हैं कि उनकी अब आवश्यकता नहीं रही। कुछ अंशों में यह बात ठीक भी है।

मनोवैज्ञानिक रूप से हमारा समाज तरुणों के साथ बँधा हुआ है। चित्रपट, खेल, विज्ञापन और फैशन सभी तरुणों के महत्त्व पर बल देते हैं। हमारी वर्तमान पीढ़ी वृद्धों को आगे आने से जितना रोकती है उतना अब से पहले कभी किसी पीढ़ी ने नहीं रोका था। इसके साथ ही साथ जीवन की अवधि भी बढ़ती जा रही है। यदि तरुण लोग वृद्धों को बुढ़ापे की निराशाओं को दबाने में सहायता नही देंगे तो बूढ़ों के लिए यह दीर्घ-बुढ़ापा अभिशाप हो जाएगा। जब किसी बूढ़े व्यक्ति की कोई भावना या कार्य आपकी अपनी भावना या कार्य के साथ टकराता जान पड़े तो ठहर कर अपने आप से पूछिए कि बूढ़े लोग अपने बुढ़ापे में क्या चाहते हैं।

कुछ वर्ष हुए एक विद्वान् ने वृद्धों की आधारभूत आवश्यकताओं का सारांश बतलाते हुए कहा था कि वे जीने

के लिए कोई बहाना या उद्देश्य चाहते हैं, रहने के लिए जगह चाहते हैं और चाहते हैं अपनी देख-भाल के लिए कोई व्यक्ति।

अपने बूढ़े संबंधियों की इन आवश्यकताओं की पूर्ति में आप उनकी सहायता किस प्रकार कर सकते हैं ? जब तक आप अपने आप को वृद्ध व्यक्ति की स्थिति में न रखें तब तक आप उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि आपके मन में बुढ़ापे के सम्बन्ध में जो झूठी धारणाएँ बैठी हुई हैं उनको निकाल दें। उन झूठी धारणाओं में से एक यह है कि बुढ़ापा मनुष्यों को एक भिन्न प्रकार का जीव बना देता है। हम में से बहुत से व्यक्ति कल्पना कर लेते हैं कि दादी या नानी बनते ही व्यक्ति में अपने आप मधुरता और प्रकाश का तेजोमण्डल आ जाता है। या, इसके विपरीत, हम यह समझने लगते हैं कि बुढ़ापे में लोग चिड़चिड़े हो जाते हैं।

वृद्ध व्यक्ति जो कुछ आज है उसे वैसा बनने में लम्बा समय लगा है और वह वैसा ही बना रहेगा। जो पिता जवानी में खाने के समय बड़ी मनमानी किया करता था, वह बुढ़ापे में भी वही करेगा। जो माँ अपनी जवानी के दिनों में छिछोरी और घमण्डी थी वह बुढ़ापे में नम्र और मृदु प्रकृति की नहीं हो जाएगी। जो स्त्री या पुरुष कभी भी किसी की बात नहीं सुनता रहा, वह बूढ़ा होने पर बदल नहीं जाएगा। पंजाबी में एक कहावत है :—

'वादड़ियाँ सजादड़ियाँ जान सिराँ दे नाल।'

अर्थात् मनुष्य की अच्छी या बुरी बान जो एक बार पड़ जाती है वह मृत्यु पर्यन्त नहीं छूटती।

एक दूसरी बड़ी अशुद्ध धारणा यह है कि वृद्धजन एकान्त, सुरक्षित और सुखद स्थान में रहना पसन्द करते हैं। इस अशुद्ध धारणा से जितना मनमुटाव होता और कटुता फैलती है उतनी शायद किसी दूसरी बात से नहीं। कोई भी वृद्ध यह पसन्द नहीं करता कि कोई दूसरा उसके लिए जीवन की योजना तैयार करे जिस पर उसे चलना पड़े। वह न तो यह चाहता है कि उसके बच्चे उसे किसी सोने के पिंजरे में बन्द कर दें और न यह कि उसे किसी अपाहज आश्रम में फेंक दें।

पाश्चात्य देशों में विवाह होते ही लड़का अपनी पत्नी के साथ अलग रहने लगता है। उसके माता-पिता जब तक कमाने और काम करने योग्य रहते हैं तब तक तो पूर्ववत् स्वतन्त्र रूप से अलग रहते हैं। किन्तु उनके अपांग, अपाहिज, निर्धन या असहाय होने पर यह समस्या उठती है कि वे कहाँ रहें। इस समस्या को हल करने के लिए वहाँ 'वृद्धाश्रम' बनाए गए हैं जिन्हें राज्य या कोई निजी संस्था चलाती है। सन्तान जब इनको अपने साथ रखने को तैयार नहीं होती तो ये वृद्धाश्रमों में भरती कर दिए जाते हैं। डा० लिलिअन मार्टिन नाम की एक महिला उनहत्तर वर्ष की आयु में वृद्धाश्रम में प्रविष्ट हुई थी और इक्यानवे वर्ष की आयु तक वहीं रही थी। वह कहा करती थी कि अनेक वृद्ध लोगों को उनकी सन्तान आत्म-विश्वास खो देने पर विवश कर देती है। बच्चे अपने माँ-बाप को उनके प्रति अपनी चिन्ता के कारण ही दुर्बल और असहाय नहीं बना देते वरन् वे सचमुच ही चाहते हैं कि उनके माता-पिता

अलग जीवन व्यतीत करें जिससे वे उनके कामों में हस्तक्षेप न कर सकें।

डा० मार्टिन ने देखा है कि बहुत से वृद्ध मनुष्य काफी कड़ा काम और परिश्रम कर सकते हैं—चाहे उन्हें कुछ मजबूरियां भी क्यों न हों। उनको परिश्रम और झंझट से बचाने और सुख देने की चिन्ता से हम उनकी क्षमताओं को समझ नहीं पाते और बराबर उनसे आराम करने, परिश्रम न करने का आग्रह कर करके उनके आत्म-विश्वास और शक्ति को खोखला कर देते हैं। वृद्ध जनों के लिए स्वयं कोई योजना नहीं बनानी चाहिए। यदि योजना बनाना आवश्यक ही है तो उनकी सलाह और इच्छा के अनुसार ही योजना बनानी चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि बूढ़ा व्यक्ति जिस मनुष्य को उसके बचपन से ही नियन्त्रण में रखता आया है और जिसका वर्षों उसने मार्ग-प्रदर्शन किया है, उस मनुष्य से न तो वह कोई सुझाव लेना ही पसंद करता है और न वह यही पसन्द करता है कि वह मनुष्य उसकी भूलों को दिखलावे और उनका सुधार करे। हम शिकायत करते हैं कि बूढ़ों में सहिष्णुता नहीं है। हम उनमें सहिष्णुता चाहते हैं। किन्तु यह भूल जाते हैं कि सहिष्णुता पारस्परिक—दोनों पक्ष में—होनी चाहिए। हम चाहते हैं कि वृद्ध-जन अपने किसी ऐसे प्यारे काम को छोड़ दें जो हमारे किसी प्रिय काम में विघ्न डालता है। अर्थात् हम लोग स्वयं जिस काम को करने को तैयार नहीं हैं, हम चाहते हैं कि उसे वृद्धजन करें। अर्थात् हम तो अपनी रुचि का काम करते रहें किन्तु वृद्ध हमारे लिए

अपनी रुचि के कार्य का त्याग कर दें। नवयुवक को भी नई परिस्थिति में अपने को एकरस करने में और अपनी आदत या अभ्यास बदलने में वर्षों लग जाते हैं। और हम मान भी लेते हैं कि इसके लिए युवक को समय की अपेक्षा है। किन्तु हम भूल जाते हैं कि सत्तर और अस्सी वर्ष के मनुष्य को भी अपने-आपको नए वातावरण में व्यवस्थित करने के लिए समय लेने का अधिकार है, उसने सारे जीवन में जो स्वभाव और आदर्श बनाए हैं वे एकाएक नव-युवकों की सुविधा पर, और इच्छा करते ही, नहीं बदल सकते।

दादा जी रजाई में बैठे-बैठे हुक्का पीने के अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकते और न दादी जी ही अपने पुराने ढर्रे का पहरावा ही छोड़ सकती हैं। वे दानों यह काम तुम्हें तंग करने के लिए नहीं करते। हो सकता है कि वे इतने बूढ़े हो गए हों कि उनमें अपनी स्थितियों को बदलने की शक्ति ही न रह गई हो, या वे अपने-आप को ठीक करने का यत्न कर रहे हों, परन्तु अब तक उन्हें इसमें सफलता न हुई हो। यदि तुम उन्हें विवश करोगे, तो परिणाम कड़वा होगा। वे खिन्न और उदास रहने लगेंगे। यदि तुम्हारे वृद्ध माता-पिता, जो सदैव तुम से दूर रहे हैं, तुम्हारे साथ एक घर में नहीं रहना चाहते तो इसके लिए तुम्हें अपने-आप को दोषी समझने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम उनसे अलग रह कर भी कई तरह से सुख और सम्मान दे सकते हो। तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे दादा-दादी के लिए जो काम किया करते थे वही

काम उनके लिए करना तुम्हारे लिए आवश्यक नहीं है। तुम किसी दूसरे प्रकार से भी उनकी वैसी ही सेवा कर सकते हो। दो तीन पीढ़ी पहले के लोगों को एक ही घर में इकट्ठे रहने के संयोग बहुत अधिक थे। पिता-पुत्र और सास-बहू भी एक ही घर में शाँति-पूर्वक रह सकती थीं। परन्तु अब परिस्थितियाँ बदल जाने के कारण विभिन्न पीढ़ियों के दो परिवारों का—बाप के परिवार का और बेटे के परिवार का—शाँतिपूर्वक एक ही घर में इकट्ठे रहना कठिन हो गया है। प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्रता चाहता है। पुत्र-वधु चाहती है कि सास ने तो अपना शासन-काल व्यतीत कर लिया, अब मुझे मालकिन बनने का अवसर मिलना चाहिए। परन्तु सास पूर्ववत् घर की स्वामिनी बनी रहना चाहती है। वह आप कार्य-निवृत्त होकर बहू को गृहस्थी के सिंहासन पर बैठा देने को तैयार नहीं। इसी से खट-पट होती है। बहुधा देखा जाता है कि लड़के के अपने पोते हो गए हैं, परन्तु उसका बाप रिटायर होकर अपने उस दादा बने हुए बेटे को घर का मुखिया होते नहीं देख सकता। इससे घरेलू जीवन में कड़ुवाहट उत्पन्न हो जाती है। यदि प्रत्येक स्त्री-पुरुष विशेष समय तक अपना बाजा बजा कर अपने-आप रंगमंच पर से हट जाए और अपनी सन्तान को आगे आने का मौका दे तो यह कठिनाई बहुत कुछ दूर हो सकती है।

यदि कोई तुम्हारा बूढ़ा संबन्धी उसी कमरे में रहना चाहता है जिसमें वह इतने वर्ष से रहता आ रहा है तो उसे वहीं रहने दो। वृद्ध-जन अपने पुराने निवास-स्थानों को सब से अधिक मूल्यवान समझा करते हैं।

यदि इस बात का निर्णय आप पर ही है कि आपका बड़ा बूढ़ा कहाँ रहे तो उपर्युक्त नियम पर चलना ही ठीक होगा। यदि आपका कोई बूढ़ा सम्बन्धी आपके साथ या किसी दूसरे के साथ रहना नहीं चाहता और अकेला ही रहना पसन्द करता है तो अच्छा यही है कि जहाँ वह रहना चाहता है उसे वहीं रहने दीजिए, चाहे इस से आपका खर्च कुछ बढ़ भी जाए।

उसके रहने का स्थान महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्व की बात यह है कि उसे इस बात का विश्वास हो कि आप उसकी भावना, उस की अभिलाषा और उसके निर्णय का आदर करते हैं। इस से उसमें आत्म-विश्वास बढ़ता है और उसमें हीन-भावना उत्पन्न नहीं हो पाती। इस के लिए आप उस से कभी कभी परामर्श ले सकते हैं और कभी कभी अपने कष्ट भी बता सकते हैं। आप उस से अपने पारिवारिक संस्मरण लिखवाने को कह सकते हैं। बूढ़े लोगों को दूसरों की बातें सुन कर इतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी कि अपनी बात सुनाने में होती है। इसलिए यदि आप उन्हें उनके अपने युग की पुरानी बातें सुनाने को कहेंगे और दतचित्त हो कर उन की बातों को सुनेंगे तो वे प्रसन्न रहेंगे। उनकी बातें सुनने से नवयुवकों को एक तो अपने स्थान के पुराने इतिहास का ज्ञान होता है और दूसरे उन वृद्धों के लिए, जिन्हों ने परिवार के इतिहास को बनाया है, मन में आदर का भाव बढ़ता है।

यदि आप वृद्धों के साथ शांति-पूर्वक रहना चाहते हैं तो, चाहे वे आप के साथ रहते हों या अलग, उन को अपनी सब शिकायतें सुनाइए, चाहे इस से उन को बुरा लगने का भी डर

क्यों न हो। यदि आप उन्हें सनकी, या पुराने युगबाह्य विचारों का, या बुद्धिहीन समझ कर उनसे साधारण सुख-दुःख की बातें न कहेंगे तो वे यही समझेंगे कि उनके साथ-दुर्व्यवहार हो रहा है। उन्होंने अपने जीवन में जो कार्यत्रम बरसों से बना रखा है उसे बदलने के लिए यदि आप परिवार के डाक्टर, वैद्य या मित्रों द्वारा उन पर दबाव डलवाएँगे तो वे समझने लगेंगे कि आप उन पर अत्याचार कर रहे हैं।

इस बात को रोकने के लिए आपको सरल और निष्कपट होना चाहिए। जितना तरुण लोग समझते हैं उससे कहीं अधिक वृद्ध जन मानसिक आघात को सहन कर सकते हैं। जिस बात को वे सहन नहीं कर सकते वह है उनका अपने को अकारथ, निकम्मा, निष्फल, महत्त्वहीन और असहाय अनुभव करना। बहुत से लोग यह समझकर कि ये बूढ़े हैं और इन्हें अमुक बात बताने से सिवाय इन्हें कष्ट होने के कोई लाभ न होगा उन से पारिवारिक संकटों की बातें छिपा लेते हैं। बूढ़ों को जीवन का अनुभव होता है। उनसे बात छिपी नहीं रहती। और वे यही सोचते हैं कि इस घर में हमारी इतनी अधिक उपेक्षा है कि हमें किसी बात को बतलाने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। इससे उन्हें पर्याप्त कष्ट होता है।

बूढ़ों के साथ सुख और शाँति-पूर्वक रहना जीवन की एक बहुमूल्य कला है। वह चुनौती भी है। कारण यह है कि यह समस्या यदि इस समय आपके सामने नहीं भी है, तो भी यह याद रखिए कि एक दिन आप भी बूढ़े होने वाले हैं।

---

२. रोगी मित्र के लिए हमें क्या करना चाहिए

एक सज्जन लिखते हैं कि "पिछली बार जब मैं रुग्ण हो कर अस्पताल में गया तो मेरा अनुभव एक डरावने स्वप्न जैसा था। सद्भावना वाले, परन्तु विचारहीन मित्रों तथा सम्बंधियों की सब समय मेरे कमरे में भीड़ लगी रहती थी।

यदि आप कभी रुग्ण हो कर खाट पर लेटे हैं, तो आप को पता होगा कि वे किस नमूने के मनुष्य होते हैं। वे आपको हर्षित करने के लिए इतना कष्ट देते हैं। एक बार बैठ जाने पर फिर वे उठ कर जाने का नाम नहीं लेते। परन्तु आप किसी प्रकार भी उनको यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि अब आप घर जाइये और मुझे विश्राम करने दीजिए। यहाँ तक कि डाक्टर और नर्सें भी रोगी को देखने के लिये आए हुए लोगों के साथ बहुत कड़ाई करने से संकोच करती है, क्योंकि इन लोगों के भावों को बहुत आसानी से ठेस पहुँच जाती है।

अस्पताल छोड़ने के उपरान्त शीघ्र ही मैंने एक चोटी के प्रेक्टीशनर डाक्टर से अपनी उस अग्नि-परीक्षा की बात कही, जिसमें से होकर मुझे देखने आने वाले मित्रों और सम्बंधियों के कारण निकलना पड़ा था।

"दर्शक"? उसने क्रोध से हुँकार करते हुए कहा। कभी-कभी, मैं समझता हूँ, वे सार्वजानिक स्वास्थ्य के लिए नासूर तथा हृदय रोग से भी, जिनके साथ साधारण जुकाम भी मिला हो,

बढ़कर विपदा प्रमाणित होते हैं। प्रत्येक सोमवार को सबेरे जब डाक्टर अस्पताल में अपनी राऊँड करते अर्थात् रोगियों को देखने के लिए चक्कर लगाते हैं तो वे देखते हैं कि उन के अनेक रोगियों, विशेषतः बच्चों की रात आराम से नहीं बीतती, प्रत्युत कई एक की अवस्था में तो रोग गम्भीर रूप से फिर लौट आया है। कारण यह कि रविवार के दिन उनको देखने के लिए आने वाले लोगों का उनके पास जमघटा लगा रहा है। सप्ताह में एकबार देखने के लिए आने वाले लोगों के कारण भी अनेक रोगियों के चंगा होने में बड़ी भारी बाधा आ पड़ती हैं। यह असम्भाव्य नहीं कि यदि बहुत निकट संबंधियों को छोड़ कर शेष सबको रोगी के कमरे में जाने से रोक दिया जाए, तो थोड़े लोग मरेंगे, विशेषतः हृदय के रोग वाले वृद्धकम मरेंगे और कुछ अधिक महीने जी सकेंगे।"

आप पूछेंगे कि यदि ऐसी बात है तो डाक्टर और नर्सें इस विषय में कुछ क्यों नहीं करतीं?

डाक्टर और नर्सें तो लोगों को बन्द करने का यत्न करती हैं। परन्तु वे उनको यह नहीं समझा पातीं कि दयालुता कभी कभी मार भी डालती है।

बहुत से डाक्टरों, नर्सों और अस्पतालों के कर्मचारियों से बात-चीत करने पर आपको पता लग जाएगा कि उपर्युक्त कथन में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं। सभी इस बात पर एकमत हैं कि देखने के लिए जाने वाले लोग रोगी के विश्राम में गड़बड़ डालते हैं, सावधानी के साथ आयोजित उसके निश्चित कार्यक्रम में बाधक होते, उसके औषध-सेवन तथा खान-पान में रुकावट

डालते, और उसको इतना अधिक थका देते हैं कि उसका आरोग्य लाभ करना बन्द हो जाता है।

अपने मित्रों को आरोग्य लाभ करने में सहायता देने के लिए डाक्टरों के बताए हुए कुछ सुझाव आगे दिए जाते हैं।

यह बात स्वतः ही अपने मन में न समझ लो कि आपके रोगी के पास जाने से वह प्रसन्न होगा। पहले टेलीफोन से या किसी दूसरी रीति से मालूम कर लो कि रोगी के पास जाना ठीक है या नहीं। फिर पूछो कि रोगी से मिलने के लिए समय कौनसा और कितना है।

इस बात का सदा स्मरण रखिए कि आपका रोगी मित्र दुर्बल है और शीघ्र ही थक जाता है। किसी रोगी के पास रहने के लिए पन्द्रह मिनट बहुत काफी समय है। यदि आपसे पहले दूसरे दर्शक उसके पास आए हैं तब तो दस मिनट ही बहुत हैं। वरन् पाँच मिनट और भी अच्छे हैं।

अपने विषय में मत बातें कीजिए। रोगी को इन में कोई दिलचस्पी नहीं। रोगी को उठाने या उत्साहित करने के लिए उससे ऐसी बातें कीजिए कि वह फुटबाल का कितना अच्छा खिलाड़ी है, उसके घर में कितना अच्छा भोजन आप ने खाया था, आप उसके साथ एक बार फिर ताश खेलने के लिए कितने लालायित हैं। उसे मित्रों की बातें सुनाइए या बताइए कि उसके कार्यालय में क्या कुछ हो रहा है। परन्तु रोगी को बात के लिए आप ही कोई विषय चलाने दीजिए। यदि वह राजनीति पर विचार करना चाहता है, तो आप भी उसमें सम्मिलित हो जाइए, परन्तु तर्क-वितर्क मत कीजिए।

अपने स्वर को ऊँचा न होने दीजिए। जब हम प्रफुल्ल करने का यत्न करते हैं तो हम में से कई लोग बहुत उच्च स्वर से चिल्लाने लग जाते हैं। ऐसे स्थान पर बैठिए जहाँ रोगी अपने सिर को हिलाए बिना आप को देख सके। उसकी दशा के संबंध में किसी प्रकार के भय का चिह्न मत प्रकट कीजिए। यह बात मान लीजिए कि वह अच्छा हो रहा है।

जब आप का समय हो चुके तो वहाँ से उठकर चले जाइए। कुछ लोग चलते समय नमस्ते करने के बाद भी दस मिनट तक वहीं मण्डराते रहते हैं। विचारशील दर्शक कहता है, "अब तो आप अच्छे लग रहे हैं। मैं जानता हूँ, आप शीघ्र ही नीरोग हो जाएँगे। परमात्मा आपको शीघ्र आरोग्य प्रदान करें!" इतना कह कर वह रोगी के कमरे से बाहर निकल आता है, जब कि अभी रोगी को इच्छा नहीं होती कि वह उसके पास से उठकर चला जाये।

अच्छा अब रोगी को देने योग्य उपहार की बात लीजिए। उसे सुन्दर फूल दीजिए, पत्र-पत्रिकाओं में से काट कर अच्छे-अच्छे कारटून तथा चित्र दीजिए, ताश के पत्ते दीजिए, ऐसे कार्ड दीजिए जिन पर उसके स्वास्थ्य लाभ के लिए शुभ कामना लिखी हो, ऐसे टिकट लगे लिफाफे और पोस्ट कार्ड दीजिए, जिनमें वह उसके स्वास्थ्य का समाचार पूछने के लिए आए हुए पत्रों का उत्तर दे सकें। "ये सब बहुत अच्छी औषधियाँ हैं।" यदि उसके यहाँ रेडियो न हो तो उसे कुछ दिन के लिए अपना रेडियो दे दीजिए, जिस से वह अपना मन बहला सके। मिठाइयाँ भी ठीक हैं। परन्तु साधारणतः उन को दूसरे दर्शक और नर्सें ही खा जाती हैं।

यदि डाक्टर समझे कि रोगी के पास बहुत से लोग आने से उसे लाभ होगा तो वह आप ही यह बात उसके परिवार वालों को बता देगा। परन्तु सामान्यतः अच्छा नियम यह है कि जब तक आप किसी के घनिष्ट मित्र या निकट संबंधी न हों तो, कभी उसे रोग में देखने मत जाइए।

एक अमेरिकन डाक्टर ने सारी बात का संक्षेप बायबिल के इस वचन में दिया है—"मैं नंगा था और तू ने मुझे कपड़े पहनाए, मैं रुग्ण था और तू मुझे देखने आया।"

वही डाक्टर कहता है—"जब अगली बार वे बायबिल का संशोधित संस्करण छापेंगे तो मुझे आशा है कि वे उसमें ये शब्द और बढ़ा देंगे; '...और तू देर तक मेरे पास नहीं ठहरा रहा।' "

---

३. शोक में सान्त्वना कैसे देनी चाहिए

जब हमारा कोई मित्र दुःख में होता है, उसके यहाँ किसी की मृत्यु हो जाती है, तो हम में से बहुत से लोग उसके दुःख को कम करने के लिए यत्न करना चाहते हैं। परन्तु बहुधा हमें उसके दुःख में सान्त्वना देने की ठीक विधि मालूम नहीं रहती। इसका परिणाम यह हो सकता है कि हम किसी शोकातुर मित्र के पास समवेदना प्रकट करने जाएँ, परन्तु, शोक को दूर करने की ठीक रीति का ज्ञान न रहने से उसके दुःख, तथा शोक को कुछ भी कम न कर सकें। यह ठीक है कि सुख में दूसरों को सम्मिलित करने से सुख बढ़ जाता और दुःख में सम्मिलित होने से अपने मित्र का दुःख कुछ कम हो जाता है। कई वर्ष हुए मेरे पुत्र का देहान्त हो गया था। उस समय मुझे अपार दुःख हुआ था। मेरे दुःख और शोक में मुझे सान्त्वना देने के लिए मेरे एक मित्र ने मुझे महाभारत का वह अंश पढ़ने को कहा था जहाँ वीर अभिमन्यु की मृत्यु के कारण शोक-विह्वल सुभद्रा और द्रौपदी को श्रीकृष्ण द्वारा सान्त्वना दिए जाने का वर्णन है। मुझे उसके पाठ से सचमुच बड़ी शान्ति मिली थी। वह अंश बड़े ही वैज्ञानिक अनुभव के आधार पर लिखा गया है। आगे कुछ ऐसे सुझाव दिए जाते हैं जिन से शोक-सन्तप्त मित्रों और आत्मीय जनों को सान्त्वना देने में सहायता मिल सकती है।

१. उनके दुःख को तुच्छ या कम प्रकट करने का यत्न मत करो। जब आप अपने मित्र से कहते हैं कि छोड़ो इस शोक

को, संसार में ऐसा होता ही है, तो आप अपने मित्र के शोक को घटाने की बजाए बढ़ा देते हैं।

जिस पुरुष का अपनी पत्नी से सच्चा प्यार है उसकी स्त्री के मर जाने से उसे भारी दुःख का होना स्वाभाविक ही है। उसको शोक न करने को कहना एक प्रकार से उसकी स्त्री की मृत्यु को उसके लिए एक बहुत साधारण सी हानि प्रकट करना है। ऐसी दशा में कहना यह चाहिए कि आपका बड़ा भारी अनिष्ट हुआ है। मैं आपके दुःख का अनुभव कर सकता हूँ, या संसार में इस से बढ़ कर अनिष्ट और क्या हो सकता है? अपने मित्र को अपना दुःख प्रकट कर लेने दीजिए, जिससे वह बाहर निकल जाए और उसका हृदय हलका हो जाए। 'इतना दुःखी क्यों होते हो' इत्यादि शब्द कहने से उसको होने वाला स्वाभाविक दुःख और शोक बाहर नहीं निकल पाता। इससे उसको भारी हानि पहुँचने की आशंका रहती है। दुःख में रो लेने से हृदय का भार हलका हो जाता है। बचपन में मैंने एक अँग्रेज़ी कविता पढ़ी थी। उसमें एक योद्धा की मृत्यु का वर्णन था। जब उसके शव को उसकी स्त्री के सामने लाया गया तो उसे देख कर वह सन्न हो गई। वह न रोई और न चिल्लाई। यह देख उसकी सहेलियों ने कहा कि यदि यह न रोएगी तो यह मर जाएगी। उन्होंने उसे रुलाने का बहुतेरा यत्न किया, पर उन्हें सफलता न हुई। अन्त में एक नब्बे वर्ष की बुढ़िया उठी और उसने उसके छोटे बच्चे को उसकी गोद में उठा कर रख दिया। इस पर सावन-भादों की वर्षा की भाँति उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई और वह मरने से बच गई। यह कविता बड़ी शिक्षाप्रद है।

२. शोकातुर मित्र के ध्यान को किसी दूसरी ओर फेर देने का यत्न न कीजिए। जो लोग शोक प्रकट करने आते हैं वे जान बूझ कर इधर उधर की बातें करने लगते हैं। वे कभी तो मौसम की बातें छेड़ देते हैं और कभी अनाज के भाव की और कभी राजनीति की। वे जिस मतलब के लिए आए हैं उसकी बिलकुल चर्चा न करके और-और विषयों की ही बातें करते हैं।

मृत्यु पर पर्दा डालने की कोई आवश्यकता नहीं। शोक में सान्त्वना देने का काम बड़ा कठिन है। उस मृत्यु को दुखदायी घटना मान कर ही अपने मित्र के शोक को हलका करने का यत्न करना चाहिए। मित्र को इधर उधर की व्यर्थ बातें सुना कर उसके ध्यान को किसी दूसरी ओर फेरने का यत्न करने के बजाये तो उसके पास जा कर चुप चाप बैठ जाना ही कहीं अच्छा है। शोकातुर मित्र समझ जाता है कि मेरे मन को इधर उधर की बातों में उलझाने का यत्न हो रहा है। जब समवेदना प्रकट करने के लिए आया हुआ मनुष्य उठकर चला जाता है तो आत्मीय जन की मृत्यु का दुःख उसे और भी अधिक सताने लगता हैं।

३. जो व्यक्ति मर गया है उसके विषय में बात करने से मत डरिए। जिन मित्रों की भावना शुद्ध होती है वे भी बहुधा दिवंगत आत्मा के संबंध में बात करने से घबराते हैं। समझा यह जाता है कि घटना इतनी भयानक है कि उसकी चर्चा न करना ही अच्छा है। शोक में अपने मित्र को सहायता देने का ढंग यह है कि जो व्यक्ति मर गया है उसे जैसा आप उसके जीवन के दिनों में जानते थे उसका वर्णन कीजिए। उसकी

मृत्यु के चित्र के स्थान में उसके जीवन का चित्र प्रस्तुत कीजिए।

एक समय की बात है, एक मनुष्य एक स्त्री के पास, जिस का भाई मर गया था, शोक प्रकट करने गया। वह बोला, मैं आप के भाई को भली भाँति नहीं जानता था। उसके संबंध में मुझे कुछ बातें बताइए। स्त्री बोलने लगी और कोई एक घण्टे तक वह उसके संबंध में बातें करती रही। इस के बाद वह बोली कि आज पहली बार है जब उसकी मृत्यु के बाद मैं अपने शोक को हलका पाती हूँ।

४. मित्र की आँखों में आँसू लाने से मत डरिए। किसी व्यक्ति का पुत्र मर गया। उस के मित्रने उससे कुछ ऐसी बातें कहीं जिससे उस व्यक्ति की आँखों में आँसू आ गये। यह देख मित्र को खेद हुआ। उसने यह बात एक अनुभवी धर्मप्रचारक से कही। धर्मप्रचारक ने उस मित्रसे कहा कि आप ने कोई बुरा काम नहीं किया। आपने तो उस व्यक्ति के आँसू गिरा कर उस का शोक हलका कर लेने में ही सहायता दी है। इस तरह दुःख को बाहर निकाल देना उसे भीतर ही भीतर दबाए रखने से कहीं अच्छा है। यदि वह व्यक्ति अपने मित्रों के सामने आँसू गिरा कर नहीं रोएगा तो एकांत में रो-रो कर उसे पंजर हो जाना पड़ेगा।

हमारी बात से कहीं मित्र की आँखों में आँसू न आ जाएँ, इसी डर से बहुत से लोग अपने हृदय को कड़ा बना लेते हैं और मित्र को उसे उस के शोक में सहायता देने में असमर्थ हो जाते हैं।

आप के किसी मित्र की स्त्री मर गई है। आप अपने मित्र

के शोक में उसे सान्त्वना देने जाते हैं। आप जानते हैं कि आप के मित्र की स्त्री को अच्छा खाना बनाने या घर में फूलों के गमले रखने का शौक था। आप मित्र के सामने इन दोनों बातों की चर्चा करते हुए डरते हैं जिस से कहीं उस का शोक उमड़ न पड़े। यह ठीक नहीं है। आप वास्तव में इन की चर्चा न करके शोक में बड़ी भारी सहायता न पहुँचाने का अपराध करते हैं। जब स्वाभाविक रीति से मनुष्य अपने दुःख को व्यक्त कर लेता है, तो इस से उसका दुःख आँसुओं के साथ बह कर बाहर निकल जाता है। एक अनुभवी मनुष्य का कहना है कि शोक को प्रकट कर देना अच्छा है, उसे दबाना अच्छा नहीं। मनोविज्ञान और वैद्यक भी इसी बात का समर्थन करते हैं। आप की किसी बात को सुन कर आप के शोकातुर मित्र की आँखों में जो आँसू आते हैं वे क्षति नहीं पहुँचाते। उन से स्वास्थ्य को लाभ ही पहुँचता है।

५. उनको बातें करने दीजिए। शोकातुर व्यक्तियों को बातें करने की आवश्यकता होती है। मित्र समझते हैं कि ठीक बात कहने की हमें योग्यता नहीं, हालाँकि उनको डर इस बात का होना चाहिए कि वे शोकातुर की बातें दत्तचित्त हो कर नहीं सुन सकते। यदि आप को देख कर आप का शोकातुर मित्र बात करने लग जाए तो आप चुप हो कर सुनते जाइए, चाहे वह एक ही बात को मुड़ मुड़ कर दस बार भी कहे। वह आप को कोई नया समाचार नहीं सुना रहा है, वरन् अपने मन की ऐसी भावनाओं को प्रकट कर रहा है जिनको बार बार कहना आवश्यक होता है। आपका आना कितना सफल हुआ है, इस का पता इसी से लगता है कि यदि आप एक शब्द बोले हैं और इस पर

आप का मित्र सौ शब्द बोला है, तो इसे अपनी बड़ी भारी सफलता समझिए।

६. उसे सान्त्वना दीजिए। उसके साथ विवाद न छेड़ बैठिए। प्रत्येक व्यक्ति जिस का प्रिय मर जाता है, वह समझने लगता है कि मैं ने कोई पाप किया है। उसका ऐसा समझना चाहे न्यायसंगत न भी हो परन्तु है स्वाभाविक ही। पति अनुभव करता है कि इसे अपनी पत्नी पर अधिक ध्यान देना चाहिए था। माता-पिता अनुभव करते हैं कि उन्हें अपने बच्चे पर अधिक समय लगाना चाहिए था। पत्नी अनुभव करती है कि उसे पति से अधिक माँगें करके उसे तंग नहीं करना चाहिए था। काश कि मैं ऐसा न करती! इस प्रकार की व्यग्रता शोक-प्रकाशन की पराकाष्ठा है। इन मनोविकारों का बाहर निकल जाना हितकर है। आप उसे फिर से शान्ति दे सकते हैं। आप के मित्र को विश्वास होना चाहिए कि दिवंगत आत्मा अच्छा पति, अच्छी पत्नी, अच्छी माता या अच्छा पिता था।

७. संचार करो—अलग मत करो। बहुधा ऐसा होता है कि जिस व्यक्ति का कोई प्यारा मर जाता है पहले दो एक सप्ताह उसके पास इतने अधिक मनुष्य शोक प्रकट करने आते हैं कि वह दब सा जाता है। फिर उस के बाद कोई नहीं आता और उसे घर सूना सूना लगने लगता है। कभी कभी तो अच्छे मित्र भी उसके पास नहीं आते। वे समझते हैं कि शोकातुर मनुष्य अकेला रहना पसन्द करता है।

८. उस समय जब सब लोग आकर मातम कर चुके हों, जब समवेदना की सब चिट्ठियाँ पढ़ कर वह उन के उत्तर दे

चुका हो, जब सब लोग अपने अपने काम में लग गए हों, उसे सान्त्वना देने की सब से अधिक आवश्यकता होती है।

उससे सम्पर्क बनाए रखो। पहले जितनी बार आप उसे मिलने जाते थे अब उससे अधिक बार मिलिए। उसे बड़ी भारी क्षति हुई है। आपका काम यह है कि उसे अप्रत्यक्ष रूप से दिखलाएँ कि उस घाटे के बाद अब उसके पास शेष कितना रह गया है।

९. कोई साकार कार्य कीजिए। एक पुरुष की पत्नी का देहान्त हो गया। उसको भोजन में कोई रुचि न रही। एक दिन उस के मित्र ने उसका चहेता भोजन—हलवा—बनाया और कटोरी भर कर उसके पास रख गया। यह साकार कार्य द्वारा सहायता करने की अद्‌भुत रीति है। यह कार्य चाहे कितना ही तुच्छ क्यों न हो परन्तु इस से यह तो प्रकट हो जाता है कि आपको अपने मित्र की चिन्ता है।

१०. उसके साथ मिलकर कोई काम करो। कर्म जीवित होने का लक्षण है। अपने मित्र के साथ मिलकर खेलने या काम करने से उसे अपने अगले जीवन में दिलचस्पी होने लगती है। यह काम उस के साथ मिल कर ताश खेलना, चित्र बनाना या हल चलाना भी हो सकता है। कोई स्त्री अपनी शोकातुर सहेली के साथ बैठ कर उसके बच्चों के कपड़े सीने या धोने में या खाना बनाने में सहायता दे कर यही काम कर सकती है।

शोकातुर मनुष्य को प्रायः संसार की बातों में दिलचस्पी नहीं रहती। उस का मन उचाट हो जाता है। वह एक ऐसे व्यक्ति की तरह हो जाता है जो घोड़े से गिर पड़ा हो। यदि

उसे फिर से सवारी करनी है तो अच्छा यही है कि उसे जल्दी से जल्दी फिर से घोड़े पर बैठा दीजिए।

११. शोकातुर व्यक्ति को उसके अपने आप से बाहर निकालिए। एक बार जब आप का मित्र अपने लिए काम करने लग जाए तो समझिए कि उस का दुःख लगभग शान्त हो गया है। एक बार जब वह दूसरों के लिए काम करने लग जाए तो समझिए कि उसका दुःख पूरी तरह से दूर हो गया है। दुःख को स्वाभाविक रीति से शान्त होने दीजिए। परन्तु यदि इस शोक के पीछे शून्य स्थान होगा तो आत्मकरुणा उस रिक्त स्थान को आकर भर देगी। इस लिए दुःख से स्वाभाविक रीति से निवृत्त होने के लिए उसे किसी नई दिलचस्पी का मार्ग दिखलाइए।

उपरिलिखित बातों में से यदि हम चार ही प्रयोग में ला सकें तो शोक को हलका करने में हम बड़े सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

---

४. स्त्री के साथ कैसे रहना चाहिए

कॉलियर नामक अमेरिकन पत्र में श्रीमती मारग्रेट ब्लेयर जॉनस्टन लिखती हैं कि अधिकाँश पुरुष केवल एक कारण से विवाह करते हैं—स्त्री के साथ रहने के लिए। जब से पृथ्वी पर मनुष्य की सृष्टि हुई है, तभी से पुरुषों के लिए यह समस्या बनी हुई है कि स्त्री के साथ कैसे रहना चाहिए? श्रीमती मारग्रेट कहती हैं कि दूसरे लोगों के क्या उत्तर हैं इसका तो मुझे ज्ञान नहीं, परन्तु अठारह वर्ष तक पुरोहित और चौदह वर्ष तक पत्नी रहने के कारण मेरे पास भी इस प्रश्न का कुछ उत्तर है।

स्त्री को समझने के लिए कोई सूत्र नहीं। परन्तु एक रहस्य है जो मैं पुरुषों को बता सकती हूँ। बहुधा स्त्री को एक अच्छे मनोवैज्ञानिक कारण से युक्तिशून्य होना पड़ता है; हो सकता है कि यही एक रीति हो जिसके द्वारा वह अपने पति से पुरुष जैसा आचरण करा सकती है।

पुरुषत्व दो टूक, निश्चित, निर्णायक और स्वतः निर्देशन-कारी होता है। इस पुरुषत्व का ही स्त्रीत्व पर प्रभाव पड़ता है और वह उसके अनुसार ही कार्य करने लगता है। इसलिए स्त्री को बहुधा चुनौती देने या उत्तेजित करने के लिए ही पति से कहना पड़ता है। "मेरा जन्म दिन मत याद रखना", शीला कहती है, क्योंकि वह चाहती है कि उसका पति उस दिन को याद रखे, और शीला के जन्म दिन का विचार उसके मन में प्रधान

बना रहे। कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं कि जब यह चुनौती भी उसके पुरुषत्व को नहीं चुभती, तो वह रोने लगती है।

साधारणतः, जो स्त्री पूर्णतः अयुक्तिसंगत प्रतीत होती है वह मानसिक आवेगों की दृष्टि से भूखों मर रही होती हैं, क्योंकि उसका पति उन दोनों के संयोग को अपना पुरुषत्व न्यायसंगत रूप से नहीं दे रहा होता। जितना चाहिये वह उतना पहल करने वाला नहीं होता। वह कभी सुझाव नहीं देता। वे कभी बाहर घूमने नहीं जाते, जब तक कि स्त्री पहले आप न कहे। यह बात भी स्त्री को ही कहनी पड़ती है कि हम अमुक स्थान को चलेंगे।

पत्नी कहती है, "तुम मुझ पर प्रेम नहीं करते।" परन्तु वास्तव में वह कहना यह चाहती है, "चाहे मैं जितना भी यत्न करूँ तुम प्रत्येक बात का होना योंही मान लेते हो। तुम कभी नहीं कहते कि मैं तुम पर प्यार करता हूं। मुझे बहुधा पता नहीं लगता कि तुम मुझ पर प्यार करते भी हो या नहीं। कदाचित यदि मैं तुम्हें बताऊँ कि मैं वस्तुतः किस चीज से डरती हूँ—यदि मैं कहूँ कि तुम मुझे प्यार नहीं करते—तब तुम मुझे कहोगे कि मैं करता हूँ।"

क्या यह अयुक्तिसंगत है? वास्तव में नहीं। बहुत सी स्त्रियाँ उपकार स्वीकृति की भूखी होती हैं; ऐसी स्त्रियाँ जो कोई व्यवसाय या नौकरी कर रही थीं, परन्तु जिन्होंने विवाह करने के लिए उस नौकरी या व्यवसाय को छोड़ दिया है; ऐसी स्त्रियाँ जो, उन के पतियों के अपने व्यावसायिक या वाणिज्य-संबंधी स्वार्थों को फैला देने के कारण, अपने को पीछे छोड़ा हुआ अनुभव करती हैं; ऐसी स्त्रियाँ जो उस शून्य

स्थान को भरने का यत्न कर रही हैं, जो उनके बच्चों के बड़ा होकर बाहर चले जाने के कारण उत्पन्न हो गया है।

पुरुष अपने गुणों के आदर की भूख को अपने छोटे-छोटे कामों से शाँत कर लेते हैं, परन्तु वे बहुधा अपनी पत्नी को इसी सन्तुष्टि से वंचित रखते हैं। वे न तो अपने काम के विषय में अपनी पत्नी के साथ विचार करते हैं और न पत्नी के काम में ही कोई दिलचस्पी दिखलाते हैं।

जिस सबसे सुखी स्त्री का मुझे ज्ञान है, वह एक व्यस्त डाक्टर की पत्नी है। मैंने डाक्टर से पूछा कि क्या वैवाहिक शाँति के लिए कोई विशेष नियम है ?

उसने मुझे बताया कि उसका पिता—जो आप भी एक डाक्टर था और जिसके काम का समय अव्यवस्थित था—अपने बहुत से कामों को छोड़ कर भी परिवार में आकर बैठने के लिए नियमित रूप से समय निकाल लिया करता था। उसकी माँ के बालों के लिए उसके पिता के किसी वाटिका से फूल लाने जैसे अनेक कामों की स्पष्ट स्मृति अब तक भी उसके मनमें बराबर बनी थी।

जिसदिन उसका विवाह हुआ था, उसके पिता ने उसे एक कार्ड दिया था। उसपर लिखा था—"सुखी विवाह का नियम" डाक्टर का घर उतना ही सुखी होता है जितना कि वह उसे सुखी बनाता है। याद रखो 'पुरुष का प्रेम उसके जीवन से एक अलग चीज़ है; परन्तु यह प्रेम स्त्री का तो समस्त जीवन ही है।'—"लार्ड वायरन"

यह योग केवल डाक्टर के घर तक ही सीमित नहीं है। एक समय की बात है, एक लारी चलाने वाले की पत्नी, पूछने पर,

अपना व्यवसाय घर का प्रबन्ध बता रही थी। मैंने उसके पति को उसकी भूल का सुधार करते हुए कहते सुना—"तुम घर की प्रबन्धकर्त्री नहीं हो; तुम घर की ही नहीं, वरन् मेरी भी मालकिन हो। और तुम्हारा व्यवसाय घर बनाने वाली है।" उस पुरुष ने मालूम कर लिया था कि स्त्री के साथ रहने में क्या चीज अन्तर्भूत है।

सम्भवत:, सब से अधिक दु:खी पुरुष वे हैं जो यह नहीं जान सकते कि उनकी स्त्री किस बात से दु:खी है। कई पुरुष पूछते हैं, "स्त्रियों को क्या हो गया है? मैं एक अच्छी आजीविका कमाता हूँ। हमारे पास एक सुखद घर है, तीन सुन्दर बच्चे हैं। इससे अधिक वह और किस चीज की इच्छा कर सकती है? वह सदा ही क्यों असन्तुष्ट और अशान्त रहती है?" इसका एक उत्तर है।

विवाह उस समय आरम्भ होता है जब स्त्री और पुरुष एक दूसरे को, अच्छा हो या बुरा, मानकर अपनाते हैं। विवाह की प्रतिज्ञाओं में कहा जाता है,"अब से आगे हम फिर कभी, मैं और तुम नहीं होंगे, दोनों मिल कर सदा "हम" बने रहेंगे।"

बहुत से जोड़ों को एक भीड़ से भरे हुए कमरे के आर-पार पति-पत्नी को मिल कर झाँकते हैं, जिस घर को हम सजाते या बनाते हैं, इन्द्रियों को सुख देने वाली जिन विलासिता की चीज़ों के बिना हम निर्वाह करते हैं, हमारे यहाँ जो बच्चे हैं, जिन चिन्ताओं से हम प्रभावान्वित होते हैं, और अपने प्रारम्भिक मत-भेदों की अस्थायी भूमिशैया में जिन झगड़ों में से होकर हम बच निकलते हैं, उन सब में उनकी विकारतन्त्र तथा आध्यात्मिक एकता का ज्ञान है। ये सब अनुभव जिन में पति और पत्नी मिलकर भाग लेते

हैं, उस चीज को बनाते हैं जिसे मनोविज्ञानी 'हम अनुभव करते हैं' कहते हैं। यह विवाह का जीवन-स्रोत है।

जब यह एकता टूट जाती है, तब कष्ट का आरम्भ हो जाता है। एक शब्द, एक कर्म, वरन् एक संकेत भी इस एकता को नष्ट कर सकता है। एक क्षण के लिए हम एक होने के उस भाव को खो बैठते हैं। 'हम अनुभव करते हैं' की पहली हानि, हो सकता है, कि क्षण भर के लिए खसक कर 'मैं' और 'तुम' की निर्जनता में चले जाना हो। यदि आप समझदार हैं तो आप इसे इसके आगे खसकने नहीं देंगे।

एक मनुष्य मनोविकार की इस एकता को प्रोत्साहित करने का विशेष कार्य किया करता था। एक समय की बात है, रात के समय उसकी स्त्री रसोई घर में थी। वह आप लॉन—तृणाच्छादित भूमि-खण्ड—में काम कर रहा था। इतने में उसके मित्र वहाँ आ गए और उसके मोटर को देख कर कहने लगे—"मित्र, तेरे मोटर का डैना किस ने चकनाचूर कर दिया?'

मित्र घास काटने वाली मशीन के ऊपर झुका हुआ था और उसकी स्त्री चुपचाप खड़ी थी और उसके हाथ रकाबी के पानी में पड़े थे। उसने पति को इस प्रकार कहते सुना: "भाई, उस दित रात को मैं असावधानता से मोटर को पिछले पाँव ग्राज में ले गया था। मैं जानता था कि यह फाटक के बहुत निकट है, परन्तु मैंने फाटक को पीछे न हटाया। दूसरे दिन जब मेरी स्त्री मोटर लेकर बाहर आने लगी तो डैना फाटक में टकरा गया। मैं समझता हूँ, हम दोनों की भूल से यह टूटा है।"

यदि पति और पत्नी संसार की भावना के विरुद्ध एक 'हमें' प्रतिष्ठित कर दें और इसको कभी न खोएँ, तो उनका विवाह कार्यत्तः अटूट होगा।

प्रभुत्व स्थापन से वैवाहिक जीवन कभी सुखी नहीं होता। पारिवारिक संबन्धों के विशेषज्ञों द्वारा की गई कई सहस्र जोड़ों की जाँच से पता लगा था कि जिन घरों में पत्नी का प्रभुत्व है उनमें ४७ प्रति सैकड़ा विवाह सुखी थे। पति के प्रभुत्व वाले विवाहों में, केवल ६१ प्रति सैकड़ा सुखी थे। परन्तु ५०—५० विवाहों में ८७ प्रति सैकड़ा सुखी थे।

वह ५०—५० दूसरे शब्दों में ऐसे विवाह, जिन में पति और पत्नी दोनों का प्रभुत्व बराबर हो, वैवाहिक समन्वय के द्योतक होते हैं। उनको मालूम करना आश्चर्य-जनक रूप से आसान होता है। यदि आपकी पत्नी हठीली और दुर्दम प्रतीत हो तो इस छोटे से प्रयोग को करके देखिए; अगली दो-चार बार जब आपके मन में क्रोध आए तो आप स्पष्ट शब्दों में कह दीजिए कि "मेरी भूल है।" आपके हाथ में यह सब से बड़ी चाल है जिस के द्वारा आप अपनी पत्नी से हथियार रखवा सकते और उसे मात कर सकते हैं। आप जानते हैं कि पहली बात जो आपकी पत्नी कहेगी वह यह होगी, "नहीं, नहीं, यह मेरी ही भूल है।"

बस इस बात को वहीं छोड़ दीजिए। इस बात पर मत झगड़िए कि यह किस की भूल है। अपने मत-भेदों का सम्मान कीजिए, लड़िए मत—याद रखिए आप दोनों एक ही पक्ष में हैं।

हम में से बहुत से लोगों को इकट्ठे रहने का साहस करने

के लिए बहुत से कौतुक और हँसी की आवश्यकता होती है। क्या आपकी पत्नी कठिन, तुनक मिज़ाज और अशांत है? आपको नाटक देखने गए या किसी प्रीति-भोज में गए कितने दिन हो गए हैं ? आप पिछली बार अपने मित्रों से मिलने कब गए थे या आपके मित्र आपसे मिलने कब आए थे ? आप ने पिछली बार अपनी पत्नी को कब आश्चर्य-चकित किया था? कदाचित् आपको इस छोटी सी कहानी से प्रेरणा मिल सकती है।

एक अँगरेज़ स्त्री लिखती है कि अगले दिन दोपहर के खाने के समय मैं एक मेज़ पर बैठी थी। मेरे सामने की ओर उसी मेज़ पर एक स्त्री अपनी चौदह-पन्द्रह वर्ष की लड़की के साथ खाना खाने बैठी थी। स्त्री अपने कोट की ज़ेब में से रूमाल निकालने लगी। रूमाल के साथ ही एक लिफाफा भी बाहर निकल आया। लड़की ने पूछा, "माँ यह क्या है ?"

माँ ने लिफाफे को खोलते हुए कहा, "पता नहीं यह क्या है।" इतने में उसके हाथ में चाँदी की दो बालियाँ आ पड़ीं और उसका मुखमण्डल चमक उठा। वह बोली, "नीना, देखो न। क्या ये तुम्हारे पिता के ऐसे अक्षर नहीं और मेरा आज ज़न्म दिन भी नहीं?"

यदि आप उस आनन्द और गर्व को देख सकते जो माँ से बेटी और बेटी से माँ में जा रहा था, तो आपने उस पुरुष की मुक्त-कण्ठ से सराहना की होती जो स्त्री को सुख से इतना परिवेष्टित कर सका था। सुख का वैसा ही प्रभा-मण्डल उस एक स्त्री पर मण्डराया होगा जिसे इग्नेल पेडरि-

योस्की ने एक विश्वविद्यालय के उपासना-गृह में पिछली पंक्ति में देखा था। उस प्रसिद्धप्यानो बजानेवालेने पूछा, "आप क्या सोच रही हैं?"

"में सोच रही हूँ कि जितना सुखी होने का मैं कभी बिचार कर सकती थी, मैं उससे भी कितनी अधिक सुखी हूँ?"

"क्या आप का मतलब यह है कि जब आप एक स्कूल में पढ़ने वाली लड़की थीं, उस समय की अपेक्षा भी अब, जबकि आप एक परिपक्व स्त्री बन गई हैं, अधिक सुखी हैं?"

"देवी जी"—और पेडरियोस्की ने प्रणाम किया—"मैं आप के पति से मिलना चाहता हूँ।"

---

५. सच्ची दानशीलता

मन की कसी हुई बागें शीतकाल में रात के समय चमकती हुई अग्नि के सामने बैठ कर जितनी ढीली होती हैं उतनी किसी ओर समय नहीं। एक सखी, जो साधारणतः मौन रहा करती थी, अपनी दूसरी सखी से बोली, "मुझे सब से बड़ा दुःख इस बात का है कि मैं कभी किसी को कुछ दान नहीं कर सकी; मेरे पास देने के लिए कभी कोई चीज़ ही नहीं रही।"

पहली सखी जानती थी कि दूसरी सखी के शब्दों का क्या अभिप्राय है। उसका पति बार-बार बीमार हो चुका था, जिस से वह ऋण के नीचे दब गई थी। वे अपने तीन बच्चों को अच्छी शिक्षा देने का यत्न कर रहे थे। सखी को हाथ में से एक पैसा छोड़ते भी दो बार सोचना पड़ता था। इस पर भी यद्यपि वह आप नहीं जानती थी, तो भी सारे नगर में कोई दूसरा मनुष्य ऐसा नहीं था जिस पर लोग सहायता के लिए उससे अधिक निर्भर करते हों।

पहली सखी ने प्रायः रुष्ट हो कर कहा, "मैं जानती हूँ कि आप सब से अधिक दानशील व्यक्ति हैं, और मैं आप को बताती हूँ, क्यों?" तब इन्होंने लेने और देने के संबंध में जो जीवन का ताना बाना है उस पर बातचीत की। थोड़ा-थोड़ा करके दूसरी सखी के मुखमण्डल का तनाव दूर हो गया। वह एक दूसरी ही दृष्टि से दान को देखने लगी।

पहले उन्होंने रुपये के सम्बन्ध में बातचीत की, जो कि दान-शीलता का सब से अधिक परिचित रूप है। बड़े बड़े धनाढ्य

लोगों के जिन दानों से अनेक धर्मार्थ संस्थाएँ बनी हैं, उन के महत्त्व को घटाना हमारा उद्देश्य नहीं। तो भी लखपति लोग इस बात को स्वयं सब से पहले स्वीकार करेंगे कि उन की सच्ची वदान्यता किसी दूसरी कोटि की थी।

सन १९१८ में इनफ्लूयन्ज़ा फैला था और डाक्टरों और नर्सों को अपने काम से अवकाश नहीं मिलता था। अस्पतालों और घरों में अवस्था बहुत ही भयानक थी तब कई बड़े नगरों में आर्य समाज जैसी कई धार्मिक संस्थाओं ने इस काम में सहायता करने का व्रत लिया था। कई बड़े-बड़े घरों के नवयुवक रोगियों की सेवा के लिए आगे आए थे। वे धनी थे और उनके लिए रोगियों की सहायता के लिए रुपया दे देना बहुत आसान था। इस के स्थान में उन्होंने सफेद वर्दियाँ पहन लीं। वे अस्पतालों के फ़र्शों को गीले कपड़े से रगड़ कर साफ करते थे, रोगियों को नहलाते थे, मरते हुओं को और उनके पीछे रहने वाले संबधियों को आराम पहुँचाते थे। न थकावट और न अपनी मृत्यु का भय ही उनको डरा सका था। वे सचमुच दानशील मनुष्य थे, जिन्होंने रुपया नहीं दिया, वरन् आपना आप ही दे दिया था।

दो बातों से दान के मूल्य का पता लगता है :—हमारे दान का उद्देश्य और हमारे ग्रहण का भाव। एक व्यक्ति ने अपने मित्र को उसके जन्म दिन पर एक सन्तरे का पौधा उपहार में दिया। जब मित्र अपने कार्यालय से साँझ को घर लौट कर आया तो क्या देखता है कि उसकी जान-पहचान का एक मज़दूर उसके घर के आँगन में एक गड्ढा खोद रहा है। मित्र ने उससे पूछा—"यह क्या कर रहे हो ?" जमदूर बोला—

"मुझे पता लगा था कि आपके जन्म दिन पर आप को किसी ने सन्तरे का बूटा उपहार में दिया है; मैं इस योग्य नहीं कि कुछ उपहार दे सकूँ। इस लिए मैंने सोचा कि यदि मैं और कुछ नहीं कर सकता तो उस पौधे को रोपने के लिए आपको एक गड्ढा ही खोद दूं।"

वह मित्र कहता है कि उस मज़दूर का वह उपहार इतना बहुमूल्य था कि मैं उसको आज तक नहीं भूल सका।

किसी दूसरी कृपा से भी बढ़ कर रुपए के दान के लिए आवश्यक होता है कि वह नम्रता और प्रसन्नता पूर्वक दिया जाए। साराह वर्नहार्डट नाम की एक सिनेमा तारिका एक प्याले में रुपये डाल कर अपने घर के पछवाड़े में रख छोड़ती थी, और उसके साथी अभिनेता जानते थे कि जब उन्हें सहायता की आवश्यकता होगी, वे चुपचाप उस कमरे में जा कर, साराह को बिना बताए, उस प्याले में से रुपया ले सकेंगे। एक सफल चित्रकार ने जब साराह की कहानी सुनी तो वह भी उसका अनुकरण करने लगा। वह कहता है कि मुझे एक अतिरिक्त अनुभव हुआ—वह प्याला गुप्त रूप से अपने आप फिर भर जाता था। कई उदार दान ग्रहण करने वाले अपनी बारी पर आप उदारदाता बन जाते थे।

हमारे यहाँ भी कहते हैं कि मनुष्य यदि दाएँ हाथ से दान दे तो उसके बाएँ हाथ को भी उसका पता नहीं लगना चाहिए। जो मनुष्य अहंकारपूर्वक या दिखलावे के लिए किसी को कुछ देता है और देने के बाद अपना उपकार बतलाता हुआ अकड़ता है, उसके दान का फल नष्ट हो जाता है। जिस डाली पर फल लगा है वह सदा झुकी रहती है। केवल फल-हीन डाल ही अकड़ कर खड़ी होती है।

हम में से अनेक लोगों के लिए धन का दान ग्रहण करना सब से कठिन बात होती है। श्रीमती साराह का जब कोई पड़ौसी रुग्ण हो जाता था तो वह झट उसके लिए डाक्टर और नर्स का प्रबन्ध कर देती थी। वह धनी थी। उसके पड़ौसी धनी नहीं थे। वे उसकी सहायता लेने से इन्कार कर देते थे। इस लिए वह आप उनके घर में जा कर रोगी की सेवा करने लगती, उनके लिए भोजन बना देती और बाज़ार से कोई चीज़ लानी होती तो ला देती। जब रोगी की अवस्था कुछ अच्छी हो जाती, तब वह थकी हुई अपने घर में आ कर लेट जाती और चकनाचूर हो जाने से कभी-कभी अस्वस्थ भी हो जाती थी। उसके पड़ौसियों के मन में कभी यह विचार नहीं आता था कि उसके लिए जो चीज़—अर्थात् आर्थिक सहायता—एक छोटी सी सेवा थी, उसे अस्वीकार करके उन्होंने झूठे अभिमान के कारण उस पर एक बड़ी सेवा का बोझ लाद दिया है, और इस प्रकार अनुदार बन गए हैं।

प्रिय भाव से दान ग्रहण करना दान-शीलता रूपी सोने की मोहर का दूसरा पहलू है। अप्रिय भाव से ग्रहण किया हुआ दान हृदय पर गहरी चोट लगा सकता है। कोई व्यक्ति कागज़ में एक सुन्दर साड़ी लपेटे, स्कूल जाने वाले लड़के की भाँति, प्रसन्नवदन घर भागा जा रहा था। रास्ते में उसका एक मित्र मिला। उसने पूछा—"क्यों भाई, आज क्या बात है? आज बड़े खुश-खुश भागे जा रहे हो?" वह बोला—"मेरी स्त्री कई वर्ष से साड़ी के लिए मेरे पीछे पड़ी हुई थी। मैं उसे साड़ी खरीद कर नहीं दे सका था। अब मुझे साड़ी मिल गई है। मैं उसे देने जा रहा हूँ।" जब वह घर पहुँचा और उसकी स्त्री ने साड़ी को खोल कर देखा तो वह रोष से

बोली—"आपकी बड़ी कृपा है जो आप मेरे लिए साड़ी लाए हैं। परन्तु अब तो हमें साड़ी की आवश्यकता नहीं, एक बड़ी दरी की आवश्यकता थी।" उसने साड़ी ले तो ली, परन्तु समय बीत चुका था, देने का आनन्द बहुत कुछ नष्ट हो चुका था। दो वर्ष की प्रतीक्षा के बाद साड़ी का देना, एक प्रकार से खीर पर राख डाल कर देने की बात हो गई थी।

इसी प्रकार एक बड़ी धनाढय स्त्री की बात है। परमात्मा ने उसे सभी प्रकार की सुख, सुविधाएँ दे रखी थीं। परन्तु उसे एक तुच्छ सी वस्तु की ज़रूरत थी। इसके लिए उसे कुछ दूर जाना पड़ता था। वहाँ जाने का कष्ट उठाने को वह तैयार न थी। उसकी एक सहेली ने उससे कहा—"आप कष्ट न कीजिए, मैं जा कर वह चीज़ आपको ला दूँगी।" यह सुन उस धनाढय स्त्री की आँखों में प्रसन्नता से आँसू आ गए। वह बोली—"एँ, आप मेरे लिए वहाँ जाने का कष्ट करेंगी!"

सहेली ने समय के रूप में जो छोटा सा उपहार उसे दिया, उससे वह अपने को उस का ऋणी मानने लगी।

सखी के समय के छोटे से दान को जिस प्रिय तथा उदार भाव से उस धनाढ्य स्त्री ने ग्रहण किया, इस से वह सखी अपने को उस का आभारी मानने लगी। एक विद्वान् लिखता है, 'किसी उपहार को शुद्ध भाव से ग्रहण करना, चाहे आप के पास उसके बदले में देने के लिए कुछ भी न हो, एक प्रकार से उस लिए हुए उपहार के बदले में आप उपहार देना है।'

समय के दान से बढ़ कर अच्छा और कोई दान नहीं है। जितना इस भेंट में आपका अपना आप रहता है उतना किसी दूसरी भेंट में नहीं—और आप के स्व से शून्य प्रत्येक भेंट

तुच्छ हो जाती है। तो भी हम में से अनेक देखते हैं कि दूसरों के लिए समय देना भौतिक पदार्थों की अपेक्षा अधिक त्याग है।

एक प्रसिद्ध मनुष्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक दिन जब वह अपने काम में व्यस्त था, तो उसका एक पुत्र उस के अध्ययन-कक्ष में घुस आया। उस व्यक्ति ने वच्चे को इधर उधर टालने के लिए उसे कई वस्तुएँ देने को कहा। उसने कहा यह चाकू ले लो, यह पैंसिल ले लो, आना ले लो। और अन्त में उसने पूछा, 'बेटा, तुम चाहते क्या हो ?' लड़के ने उत्तर दिया, 'पिता जी, मैं आप को ही लेना चाहता हूँ।'

हम सब ऐसे लोगों को जानते हैं जो बाह्यतः उदार माता-पिता हैं, जो अपने बच्चों पर प्रत्येक वस्तु लुटाते हैं, कभी कभी तो बच्चों को वे वस्तुएँ देने के लिए आप स्वयं उनके बिना ही निर्वाह कर लेते हैं। और हम जानते हैं कि ऐसे बच्चे बहुधा कृतघ्न तथा बिगड़े हुए छोकरे-छोकरियां निकलते हैं। बुद्धिमान माता-पिता ही एक इस बात का अनुभव करते हैं कि बच्चों पर लगाने के लिए रुपया नहीं, वरन् समय ही सर्वोत्तम बस्तु है।

एक समृद्ध और व्यस्त व्यापारी ने एक बार अपने विचार-शील मित्र से पूछा, 'आप जानते हैं, मैं अपने पुत्र को दीवाली पर क्या उपहार दूंगा ?' मित्र प्रत्याशा कर रहा था कि व्यापारी कोई बहुमूल्य उपहार देने जा रहा है। परन्तु उसे बड़ा विस्मय हुआ जब व्यापारी ने उसके हाथ में एक कागज का टुकड़ा दिया, जिस पर लिखा था, 'मेरे प्यारे पुत्र, मैं प्रत्येक शनिवार को एक घण्टा और प्रत्येक रविवार को अपने दो घण्टे

तुम्हें देता हूँ, तुम जैसे भी चाहो उनका उपयोग कर सकते हो।—तुम्हारा पिता।'

इस पर उस विचारशील मित्र ने टिप्पणी करते हुए कहा, 'यह सब से बड़ा उपहार है जो कोई पिता अपने पुत्र को दे सकता है और इस उपहार का पुत्र को देना प्रत्येक पिता का कर्तव्य है।'

जिस प्रकार उपहार ऐसा नहीं होना चाहिए, जिस पर बहुत अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता हो, उसी प्रकार जो समय आप दूसरे प्रयोजन पर लगाते हैं वह भी ऐसा नहीं होना चाहिए जो भारी और कष्टदायक मालूम हो।

यदि आप किसी समय सायंकाल मित्र को देखने के लिए समय निकाल नहीं सकते, तो फोन के द्वारा ही उसे अपना अभिवादन भेज सकते हैं। यदि चिट्ठी लिखने में देर लगती हो तो कार्ड ही भेज दीजिए। कई लोग अपने पास विशेष अवसरों—जैसा कि वर्षगाँठ, आरोग्य-कामना, बैशाखी, दीवाली—पर भेजने के लिए अभिवादन-पत्र छाँट कर रख छोड़ते हैं। जो समय वे पत्र पर पता लिखने, उसे लिफाफे में डालने और उस पर टिकट लगाने में व्यय करते हैं, उसके दौरान में वे प्रेमपूर्ण प्रफुल्लता का विस्तार करते हैं। लोग उन्हें विचारशील तथा उदार मित्र मान कर उनका गुण-गान करते हैं।

सदय आवेग की अपेक्षा सच्ची दानशीलता के लिए हमारे अपने-आपकी अधिक आवश्यकता होती है। सब से बढ़ कर इस के लिए कल्पना शक्ति की—लोगों की उलझनों और आवश्यकताओं को देखने और यह जानने की क्षमता

की कि हम उनके लिए अपने-आपको प्रभावोत्पादक रीति से कैसे खर्च कर सकते हैं—अपेक्षा होती है। एक विद्वान् कहता है, "यदि कोई एक ऐसी चीज़ है, जिसका सिखाना मैं बच्चे के लिए सब से अधिक आवश्यक समझता हूँ तो वह यह है, कि वह अपने को दूसरे के स्थान में होने की कल्पना कर सके, वह अपनी माँ की थकावट, अपने पिता की चिन्ताओं, अपने छोटे भाइयों के एकांत में डरने का और उनके बोझों को हलका करने के लिए अपने आपको उदारता-पूर्वक लगाने का अनुभव कर सके। जिस बच्चे ने स्थिर भाव से उदार होना सीखा है वह वयस्क हो जाने पर भी दानशील ही बना रहेगा, लोग उससे बहुत प्यार करेंगे और इसलिए वह सच्चे अर्थों में सफल होगा।

हम में से बहुत से लोग देना चाहते हैं। सौभाग्य की बात है कि दानशीलता के अनेक रूप हैं। हम उस वदान्यता पर विचार कर रहे हैं जो दूसरे के अभ्युदय तथा सफलता से प्रसन्न होती है, और सहिष्णुता की उस वदान्यता पर, जो मनुष्य को दूसरे के दृष्टिकोण से किसी चीज़ को देखने में समर्थ बनाती है, जो उसे अपने अभिमत तथा वैयक्तिक विशेषताओं को रखने का अधिकार देती है।

एक वदान्यता कौशल की है, जो मनुष्य को विचारहीन, निर्दय शब्दों और कर्मों से परे रखती है; एक धैर्य की उदारता है जो दूसरों की दुःखवार्ता को सुनती है; एक सहानुभूति की वदान्यता है, जो दूसरों की निराशा तथा शोक में हिस्सा बँटाती है।

कदाचित् सब से बड़ी वदान्यता वह है जो सन्देह का

लाभ देती है—जो किसी की निन्दा-चुगली को विस्तार के साथ सुनने से इंकार करती है, जो सब से बुरे की अपेक्षा सब से अच्छे में विश्वास करती है। कुछ समय की बात है, किसी निन्दा के आधार पर एक बिरादरी ने अपने एक सदस्य का बहिष्कार सा कर रखा था, जिससे उस व्यक्ति को बड़ा भारी कष्ट हो रहा था। उस व्यक्ति के मित्र ने खोज करके पता लगाया कि यह निन्दा कहाँ से और कैसे आरम्भ हुई। तब उसने सब के सामने उस निन्दा का खण्डन किया और निन्दा करने वालों को डाँटा। इससे उस व्यक्ति के हृदय का बोझ हलका हो गया और उसका मुखमण्डल प्रसन्नता से चमक उठा। उसे एक बहुत ही अप्रत्याशित सुख की प्राप्ति हो गई। इसलिए केवल किसी को धन देना ही दानशीलता नहीं, वरन् दूसरों की त्रुटियों और भूलों पर उदारता से काम लेना और उनके कष्टों को दूर करने के लिए अपना समय देना ही सच्ची दानशीलता है।

---

६. फ्रेंकलिन के तेरह सूत्र

अमेरिका के प्रसिद्ध विचारक और कर्मयोगी महात्मा बेंजेमिन फ्रेङ्कलिन ने ७९ वर्ष की आयु में अपनी आत्मकथा में निम्नलिखित तेरह सूत्र लिखे थे, जिन पर आचरण करने से वह समझता था, मनुष्य सुख और सफलता प्राप्त कर सकता है। इनमें से प्रत्येक पर वह एक-एक सप्ताह विशेष ध्यान दिया करता था। इस प्रकार वर्ष भर में इन तेरह सूत्रों की चार बार पुनरावृत्ति हो जाती थी। सब कोई अपनी विशेष आवश्यकता के अनुसार इन सूत्रों में थोड़ा सा फेर-फार करके अपने लिए ऐसे ही तेरह नियम बना सकता है और उन पर अभ्यास करके लाभ उठा सकता है।

(१) मिताहार—इतना मत खाओ कि जिससे शरीर में उदासी उत्पन्न हो जाए; इतना मदिरापान मत करो जिससे तुम बेसुध हो जाओ।

(२) मौन—केवल तभी बोलो जब तुम्हारे बोलने से तुम्हें या दूसरों को लाभ पहुँचता हो; व्यर्थ में बक-बक मत करो।

(३) व्यवस्था—तुम्हारी प्रत्येक वस्तु के लिए विशेष स्थान होना चाहिए; तुम्हारे प्रत्येक काम के लिए समय निश्चित होना चाहिए।

(४) निश्चय—जो काम तुम्हें करना चाहिए उसे करने का दृढ़ निश्चय करो; जिस बात का तुम निश्चय करो उस काम को अवश्य पूरा करो।

(५) मितव्ययता—दूसरों की भलाई या अपनी भलाई को

छोड़ कर और किसी बात पर पैसा मत खर्च करो। अर्थात् कोई चीज़ व्यर्थ नष्ट मत करो।

(६) *उद्योग*—कोई समय नष्ट मत करो; सदा किसी न किसी उपयोगी काम में निरत रहो; सभी अनावश्यक कामों को छोड़ दो।

(७) *निष्कपटता*—किसी दुःखदायक धोखे का उपयोग मत करो; निष्कपटता-पूर्वक और न्याय-पूर्वक सोचो, और यदि बोलो तो उसके अनुसार ही बोलो।

(८) *न्याय*—चोट पहुँचा कर अथवा उन लाभों को रोक कर जिनका पहुँचाना तुम्हारा कर्तव्य है किसी की हानि मत करो।

(९) *संयम*—सदा अतियों से बचो; अपना कोई अपकार होने पर भी उचित से अधिक उसके लिए बुरा न मनाओ।

(१०) *स्वच्छता*—शरीर, वस्त्र या निवास के संबंध में किसी प्रकार का भी मैलापन सहन न करो।

(११) *शांति*—तुच्छ-तुच्छ सी बातों से या ऐसी दुर्घटनाओं से जो सामान्य तथा अनिवार्य हैं, अशान्त मत हो जाओ।

(१२) *ब्रह्मचर्य*—स्वास्थ्य तथा सन्तान के सिवा और किसी काम के लिए क्वचित् ही मैथुन करो; कभी इतना मैथुन मत करो जिससे उदासी, दुर्बलता या तुम्हारी अपनी या किसी दूसरे की शांति या ख्याति की हानि हो।

(१३) *नम्रता*—बुद्ध, ईसा और सुकरात का अनुकरण करो।

महात्मा फ्रेङ्कलिन ने अपनी आत्मकथा में ये सूत्र इसलिए लिखे थे जिससे उसके वंशज भी इन पर आचरण करके लाभ उठा सकें।

---

७. दाम्पत्य प्रेम को बढ़ाने वाली बारह बातें

(१) पति और पत्नी दोनों एक ही समय में क्रुद्ध न हों।

(२) अकेले या दूसरों की संगति में एक दूसरे पर लगा कर बात मत करो।

(३) जब तक घर को आग ही न लग गई हो एक दूसरे के साथ चिल्ला कर मत बोलो।

(४) जब तक तुम्हें पूर्णरूप से निश्चय न हो कि कोई दोष हुआ है तब तक दूसरे को दोष न दो और सदा प्रेमपूर्ण रीति से बात करो।

(५) दूसरे से भूल हो जाने पर उसे ताना मत मारो।

(६) एक दूसरे को हानि या दुःख पहुँचाने के भाव से कभी कोई टिप्पणी न करो––यह नीचता है।

(७) दिन भर के लिए दूसरे से जुदा होते समय ऐसे प्रेम-पूर्ण शब्द कहना मत भूलो, जिनका विचार तुम्हें जुदाई के काल में भी होता रहे।

(८) किसी क्रोध या शिकायत को सूरज डूबने तक न बनी रहने दो।

(९) जब भी मिलो प्रेमपूर्ण स्वागत के साथ मिलो।

(१०) जो दोष तुम से हुआ है, उसे तब तक कभी मत

जाने दो, जब तक कि तुम उसे स्पष्ट शब्दों में स्वीकार न कर लो और उसके लिए क्षमा न माँग लो।

(११) प्रारम्भिक प्रेम के सुखमय घण्टों को कभी न भूलो।

(१२) जिस बात के होने की सम्भावना थी और वह नहीं हुई, उसके लिए आहें मत भरो। वरन् जो कुछ इस समय है उसी का सर्वोत्तम उपयोग करो।

---

८. अपनी पत्नी को वैधव्य काटना सिखाइए

बिवाह के समय पति अपनी पत्नी से प्रतिज्ञा करता है: "मेरी सारी धन-सम्पत्ति तेरी होगी; मैं जब तक जीता हूँ, तेरी सुख-सुविधा के लिए प्रत्येक संभव यत्न करूँगा।" इतना ही नहीं, वरन् उसका नैतिक कर्तव्य है कि ऐसा प्रबन्ध करे कि जिस लड़की से उसने विवाह किया है अपने मरने के उपरान्त भी उसे किसी प्रकार का आर्थिक कष्ट न हो।

हमारे भारत में दस में से नौ पति ऐसे होते हैं, जो अपनी पत्नी के लिए किसी प्रकार का प्रबन्ध किए बिना ही संसार से चल देते हैं। कुछ थोड़े से लोग अपने जीवन का बीमा कराते हैं। परन्तु उन में से भी कई पत्नी पर ऋण छोड़ जाते हैं या उन्होंने अपना घर गिरवी रखा होता है। बीमे का रुपया क्वचित् ही इतना होता है कि जिससे उसके बाल-बच्चे उसके बाद रोटी खा सकें। इसके अतिरिक्त कदाचित् ही कोई ऐसी पत्नी होती होगी, जिसे अपने पति के धन्धे, आय, कामों में लगाई हुई पूंजी, ऋण और बजट आदि का जितना चाहिए उतना ज्ञान हो। इस पर भी हो सकता है कि इन सारी समस्याओं का पहाड़ एकदम उसपर आ टूटे।

जब तक उनके जोड़ चर-चर नहीं करने लग जाते, तब तक बहुत से पति इस बात पर गम्भीरता-पूर्वक विचार नहीं करते कि उन के मरने के उपरान्त उनकी स्त्री का क्या बनेगा। परन्तु ३० वर्ष के पुरुष को इस विषय में ६० वर्ष के पुरुष की अपेक्षा अधिक चिन्ता करनी चाहिए। यदि वह मर जाए तो

हो सकता है कि उसकी स्त्री को ४० वर्ष का वैधव्य काटना पड़े। संभव है उसे मकान का किराया देना पड़ता हो, बच्चों के पालन-पोषण तथा शिक्षण का प्रबन्ध करना पड़े। इसलिए पति को चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके पत्नी को वैधव्य का जीवन बिताना सिखाए। यह बात कोई बुरी और अपशुकन नहीं, वरन् बुद्धिमत्ता और दयालुता की है। और यदि इस समस्या को समझदारी के साथ सुलझाया जाए तो हो सकता है कि इस से अन्त में पति का जीवन कुछ बढ़ जाए, क्योंकि चिन्ता से बढ़ कर स्वास्थ्य को नष्ट करने वाली शायद ही कोई चीज़ हो।

पत्नी की शिक्षा में पहला पग सुहागरात मनाने के शीघ्र ही बाद उठाया जा सकता है। तब पति को अपने सारे घर का प्रबन्ध और रुपए-पैसे का हिसाब पत्नी को सौंप देना चाहिए। अन्ततः, परिवार के खर्च के लिए धन कमाने में उसे काफी व्यस्त रहना पड़ेगा। पत्नी को देखना चाहिए कि क्या वह घर का सारा खर्च चला सकती है, सारे बिल अदा कर सकती है, आय-व्यय को बराबर करने का प्रबन्ध कर सकती है, देख सकती है कि बीमे के लिए हम कितना रुपया निकाल सकते हैं और आयकर की भी गणना कर सकती है। उसे एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक देखते रहना चाहिए कि कौन-कौन खर्च घटाए जा सकते हैं।

इस प्रकार उसे अपने पति के धन्धे, व्यय और कामों में लगाई हुई पूँजी की पूरी-पूरी जानकारी रखनी पड़ेगी। समय पाकर उसे व्यापार जगत् का भी ज्ञान हो जाएगा। स्त्रियों में किसी चीज का ब्योरा जानने की जितनी उत्कट लालसा रहती है, उतनी क्वचित् ही किसी पुरुष में होती है। स्त्री को एक बार व्यापार का चस्का लग जाने पर फिर पुरुष को अपने व्यापार में उससे अच्छा भागीदार मिलना कठिन है। और

उसको पता लग जाएगा कि यदि स्त्री के हाथ में—मान लीजिए बीमे से—रुपया आ गया, तो वह उसे इधर-उधर उड़ा नहीं देगी।

अगला पग इन्शूयरेंस या बीमा है। जो पुरुष कोई बीमा करा सकता है और उसे नहीं कराता, वह मूर्ख है। यह पूंजी को अच्छे काम में लगाना है, यह निर्दोष योजना और जागीर-निर्माण की सरलतम रीति है।

लाभ (बेनीफिट) किस प्रकार चुकाए जाएँ? यह बात स्त्री की व्यापार-बुद्धि पर निर्भर करती है। यदि आप औसत दर्जे के कमाने वाले हैं तो आप का बीमे का धन उससे अधिक होगा जितने का प्रबंध करने का पत्नी को अभ्यास है। क्या वह एक बढ़िया साड़ी और कई दूसरी ऐसी चीजें खरीद कर जिनको वह लेना चाहा करती थी, अपने को इस भ्रान्ति में डाल लेगी कि मैं धनाढ्य हूँ और इस बात को भूल जाएगी कि अब आगे और आय नहीं होगी ? इनश्यूरेंस कम्पनियों को बहुत दिन से यह बात मालूम हैं कि विधवाओं की एक बहुत बड़ी संख्या बीमे का रुपया पाने के बाद एक वर्ष के भीतर ही एक मुश्त खर्च कर डालती हैं। इस बात को रोकने के लिए उन्होंने बीसियों विभिन्न कार्यक्रम तैयार किए हैं। उनके द्वारा बेनीफीशियरी (जिसे बीमे का रुपया मिलता है) को मासिक या वार्षिक रूप से थोड़ा-थोड़ा रुपया दिया जाता है, जिससे कि वह अपने आप को एकदम धनाढ्य न समझने लगे। दूसरे शब्दों में एक मुश्त ५,००० रुपया नगद पाने के स्थान में आप ऐसा प्रबंध कर सकते हैं, जिससे उसे विशेष काल तक ७५ रुपया मासिक मिलता रहे।

परन्तु यदि आप अपनी पत्नी को एक अच्छी व्यापार-

प्रबन्धकर्त्री बनना सिखा सकते हैं तो आप उसके लिए एक मुश्त ही रुपया दिलाने का प्रबन्ध कर सकते हैं। फिर वह अपने आप ही इसे काम में ला सकेगी। कई इनश्यूरेंस कम्पनियाँ उस रुपये पर जो उनके पास रहने दिया जाता है कुछ व्याज भी देती हैं, परन्तु यह व्याज उस कमाई तक नहीं पहुँचता जो कोई विधवा किसी अच्छे दलाल के द्वारा रुपए को बांडों और शेयरों में लगा कर प्राप्त कर सकती है।

यदि आप अपनी पत्नी को अपनी इनवेस्टमेंटों के प्रबंध की शिक्षा देना चाहते हैं तो इसके लिए आपको केवल दो-ढाई आने प्रतिदिन ही किसी दैनिक समाचार-पत्र पर खर्च करने पड़ेंगे। आप दोनों मिल कर समाचार-पत्र में उन पन्नों का अध्ययन करें जिन में शेयर-बाँड आदि के भाव छपे होते हैं। और कुछ चने हुए शेयर झूठ-मूठ खरीदने का बहाना कीजिए। इससे आप किसी प्रकार की जोखिम उठाए बिना, परीक्षा तथा भूल द्वारा, कुछ न कुछ सीख लेंगे। जो पत्नियाँ अपने पति के बीमे के रुपये को किसी काम में लगाना या उसकी जागीर का प्रबंध करना चाहती हैं या जिन को ऐसा करना पड़ता है, उन सब को शेयरों और स्टॉक मार्केट का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

अपनी पत्नी को वैधव्य काटना सिखाने के लिए एक दूसरा पग उसे कोई ऐसा काम सिखा देना है, जिसकी कमाई से, यदि उसे आवश्यकता पड़े तो, वह अपनी आजीविका चला सके। एक मित्र ने बताया कि यदि उसे कुछ हो भी जाए तो उसकी स्त्री अपना निर्वाह आप कर सकती है। विवाह के पहले वह अध्यापिका थी और वह फिर भी अध्यापिका बन सकती है।

मैंने उससे कहा कि आपका विवाह हुए १५ वर्ष हो गए हैं और इस बीच में आपकी स्त्री ने एक दिन भी अध्यापन का काम नहीं किया, उसने अध्यापन की जो कला सीखी थी उसको अब ज़ंग लग चुका है और तब से और बहुत सी नवयुवतियाँ और अधिक योग्य लड़कियाँ उस्तानी बन गई हैं। उसने कहा कि इस पर भी वह किसी छोटे गाँव के देहाती स्कूल में अध्यापिका या किसी बड़े धनी परिवार के बच्चों को घर पर पढ़ाने वाली ट्यूटर (शिक्षिका) बन सकती है। दूसरी पत्नियों के लिए भी इसी प्रकार की कोई व्यवसाय-योजना बनाई जा सकती है।

मनुष्य अपने जीवन में चाहे कितना भी रुपया कमा कर छोड़ जाए, खर्च करने से वह एक दिन चुक जाएगा। परन्तु, इसके विपरीत, यदि पत्नी को सीना-पिरोना, कटाई-सिलाई, लिखाना-पढ़ाना, अध्यापन या वैद्यक आदि कोई काम आता है तो वह कभी भूखी नहीं मर सकती।

कुछ अधिक धनी लोग तो मरने के पूर्व, अपनी सम्पत्ति के संबंध में मृत्यु-पत्र अर्थात् वसीयत छोड़ जाते हैं। परन्तु मध्यवर्ग के अधिकाँश लोग ऐसी कोई वसीयत नहीं करते। इससे उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नियों को बड़ी कठिनाई होती है। इसलिए अच्छा यही है कि सब कोई अपनी सम्पत्ति के बँटवारे के संबंध में सविस्तर वसीयत करदे, जिससे बाद को कोई झगड़ा न हो और उसकी पत्नी को व्यर्थ में दुःख न उठाना पड़े।

अच्छा यह है कि पत्नी अपने पति के वकील और बैंकरों से मिलती रहा करे, ताकि बाद को जब उसे उनसे काम पड़े तो वह उनके लिए कोई बिलकुल अपरिचित व्यक्ति न हो। उसे बैंकों के संबंध में भी आधारभूत बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। पति की मृत्यु के बाद बैंकों और डाक-घर के

सेविंग फण्ड से रुपया निकालने में विधवाओं को बड़ी कठिनाई हुआ करती है। इनके विचित्र-विचित्र नियम और उपनियम रुपया निकालने में बड़े बाधक हो जाते हैं। सम्मिलित कुटुम्बों में भी विधवा को पेट भरने और स्वतन्त्रता का जीवन बिताने के लिए बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता हैं। यदि उसे कुछ ज्ञान नहीं होगा तो वह धक्के खाती फिरेगी और उस का जीवन उसके लिए दूभर हो जाएगा।

एक बड़ी समझदारी की बात यह है कि जो जो बातें आप जिस जिस ढंग से किया देखना चाहते हैं, उनको बड़ी सावधानी के साथ एक कागज़ पर लिख लीजिए और उस चिट्ठी को ऐसे स्थान में रख दीजिए जहाँ से आप की स्त्री उसे आसानी से ले सके। उस चिट्ठी में उन सब बातों का ब्योरा रहना चाहिए जिनका ज्ञान आप की पत्नी के लिए आवश्यक है, जैसा कि किस-किस से रुपया लेना है, आपका रुपया कहाँ-कहाँ जमा है, आप को किस-किस का और कितना-कितना रुपया देना है, किसी कम्पनी या फर्म में आपके कितने हिस्से हैं, या आपकी पुस्तकें कौन-कौन प्रकाशक और किस-किस रायल्टी पर छाप रहे हैं, इत्यादि।

पति और पत्नी के लिए जिस बात का अनुभव करना सब से अधिक आवश्यक है वह यह है कि विधवा हो जाने पर उस की आय सधवा अवस्था की अपेक्षा बहुत कम हो जाएगी। इस बात को बहुत ही कम लोग भली भाँति समझते हैं। जो पुरुष इस तथ्य को समझ लेगा वह अपनी पत्नी को वैधव्य काटना सिखाने की आवश्यकता का भी अनुभव करेगा।

---

९. किसी की बड़ाई कैसे करनी चाहिए

दूसरे लोगों की बड़ाई करने में अपने को निपुण बनाना उनके साथ अपने सम्बन्धों को स्निग्ध और प्रशान्त बनाने की सर्वोत्तम रीति है। निष्कपटता-पूर्वक की गई प्रशंसा दूसरे मनुष्य को उसकी अन्तर्वर्ती योग्यता और सद्गुण का अनुभव कराने में सहायता देती है। इसके अतिरिक्त दूसरे की बड़ाई करने की हमारी योग्यता से हमारे अपने अहं को सहारा मिलता है। और यह कोई बुरी बात भी नहीं।

हम उस प्रशंसा को कभी नहीं भूलते जिससे हमें गहरी प्रसन्नता हुई हो और न ही उस व्यक्ति को भूलते हैं जिसके मुख से वह प्रशंसा निकली थी। इस पर भी यदि वह प्रशंसा भद्दे ढंग से की जाए तो इससे उस प्रशंसा की चमक अनावश्यक रूप से फीकी पड़ जाती है। मानवीय.सम्बन्धों में किए जाने वाले सभी साहसिक कार्यों की भाँति दूसरे की बड़ाई करने की कला के लिए भी विचार और अभ्यास की अपेक्षा रहती है। हममें से प्रायः प्रत्येक को उस अनुताप और खेद का अनुभव हो चुका है जो मनुष्य को उस समय होता है जब उसके द्वारा की गई किसी की बड़ाई का इस लिए कोई प्रभाव नहीं होता क्योंकि उसने अनुचित समय पर और अनुपयुक्त शब्दों में वह बड़ाई करने की भूल की थी।

एक अभिनेत्री ने एक दूसरे अभिनेता की ठीक शब्दों में बड़ाई की थी। जब अभिनेता अभिनय कर चुका तब अभिनेत्री ने उससे यह नहीं कहा कि "आपने बहुत अच्छा अभिनय

किया है।" यह तो वह आप भी जानता था। इसके विपरीत उसने कहा—"आप बहुत सुन्दर लगते थे।" वह अभिनेता अभिनेत्री की इस टिप्पणी को कभी नहीं भूला। जिस गुण के लिए हमारी प्रसिद्धि नहीं है उसके बखान से आनन्दित होना मानवीय प्रकृति है। जब कोई मनुष्य हमारे व्यक्तित्व के किसी ऐसे अंश की ओर हमारा ध्यान दिलाता है जिसे बहुत लोग नहीं जानते तो वह अपने को सदा के लिए हमारा मित्र बना लेता है।

हम सब अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं पर गर्व करते हैं। यह समझना भारी भूल है कि किसी मनुष्य से यह कह कर कि आप ठीक अमुक व्यक्ति जैसे लगते हैं हम उसकी प्रशंसा कर रहे हैं, चाहे वह 'अमुक व्यक्ति' कोई सिनेमा-तारिका ही क्यों न हो। हमारे जैसा कोई दूसरा व्यक्ति भी है, जितनी कम प्रसन्नता हमें इस बात को सुन कर होती है उतनी कम किसी दूसरी बात से नहीं।

सर्वोत्तम बड़ाई के शब्द वे होते हैं जो हमारी व्यक्तिगत विशिष्टता के भाव को पुष्ट करते है। एक स्त्री इतनी पतली थी कि केवल अस्थि-पंजर ही देख पड़ती थी। एक दिन वह वाटिका में टहल रही थी। एक सखी ने उसे देख कर कहा—"देखिए तो सही, चार बच्चों की माँ है फिर भी पेट कैसा सपाट है।" उसने यह नहीं कहा कि तुम तो बिलकुल सूखी हुई हो। पहला आघात शान्त हो जाने पर उसके रूप के सम्बन्ध में की गई इस उदार टिप्पणी से उस स्त्री को बड़ी प्रसन्नता हुई।

जब कोई मनुष्य आपकी बड़ाई किसी दूसरे व्यक्ति के पास करता है और वह दूसरा मनुष्य उसकी बात आपको

आकर सुनाता है या जब आप किसी की बड़ाई उसके मुँह पर न करके किसी दूसरे के पास करते हैं और वह दूसरा मनुष्य आपके द्वारा की गई बड़ाई को उस मनुष्य को आकर सुनाता है तो इससे बढ़ कर सन्तोषदायक बड़ाई दूसरी कोई नहीं होती। किसी व्यक्ति ने एक पत्रिका में लेख लिखा। उस लेख की प्रशंसा में एक प्रसिद्ध व्यक्ति ने किसी दूसरे मनुष्य को चिट्ठी लिखी। वह दूसरा मनुष्य संयोग से लेखक का परिचित था। उसने उस प्रसिद्ध व्यक्ति की चिट्ठी लेखक के पास भेज दी। इससे लेखक को जितनी प्रसन्नता हुई उतनी शायद उसके मुँह पर उसकी प्रशंसा करने से न होती।

निपुणता के साथ उद्भावित प्रशंसा हम पर गहरा प्रभाव डाल सकती है, परन्तु ऐसी प्रशंसा करना सबसे कठिन होता है। कारण यह कि ऐसी प्रशंसा नितान्त अन्तःप्रेरणा पर निर्भर करती है।

बड़ाई कई प्रकार की होती है। उनमें से एक प्रकार वह है जिसमें विशेष रूप से आनन्ददायक चुभन रहती है। इसे हम फिर से याद दिलाने की अतिरिक्त बड़ाई कह सकते हैं। जब कोई मनुष्य आपको किसी ऐसी बात की याद दिलाता है जो आपने बहुत दिन हुए कभी कही थी और जिसका उस पर भारी प्रभाव पड़ा था तो इस विस्मय से आपका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। उसने आपकी बात को इतने दीर्घकाल तक हृदय में संचित रखा और उचित समय पर आपको दे दिया, यह एक ऐसा अनुभव है जो आपके आत्म-सन्देह की माँगों को अवश्य ही साफ़ कर देगा।

हँसी के रूप में की गई बड़ाई भी हृदय पर उतना ही गहरा प्रभाव डालती है जितना कि गम्भीरता-पूर्वक की गई

प्रशंसा। जिस मनुष्य की हँसी के रूप में ऐसी बड़ाई की जाती है उस मनुष्य पर उसका मुँहतोड़ उत्तर देने का दायित्व भी नहीं रहता। वह दूसरे लोगों के साथ ही हँस सकता और प्रसन्नतापूर्वक अपनी बड़ाई को स्वीकार कर सकता है।

एक रैस्टोरेंट में एक मित्र-मंडली भोजन कर रही थी। जब वे भोजन कर चुके तो उनमें से एक ने कहा कि हममें से प्रभुदयाल सब से अच्छा गणितज्ञ है। शेष सब ने भी उसकी हाँ में हाँ मिला दी। इस पर प्रभुदयाल रैस्टोराँ का बिल चैक करने लग गया। तब वे सब मुँह छिपा कर हँसने लगे। स्पष्टतया यह प्रभुदयाल की प्रशंसा थी।

स्त्री-जाति और पुरुष-जाति की अपनी-अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं। एक अच्छी प्रशंसा करने वाला मनुष्य इन विशेषताओं का ध्यान रखना कभी नहीं भूलता। बहुत से पुरुष यदि आँख-नाक आदि उनके व्यक्तिगत अंगों की प्रशंसा की जाए, तो वे थोड़ा-बहुत बुरा मानते हैं। रंग या आँखों की प्रशंसा स्त्रियों के लिए ही शोभा देती है। पुरुष तो तभी प्रसन्न होता है जब उसके बलवान् या विद्वान् होने की प्रशंसा की जाती है। स्त्रियाँ प्रत्यक्षतः अपने सौन्दर्य, अपनी क्षिप्र अन्तर्दृष्टि, बात को समझने की क्षमता और सहानुभूति के लिए प्रशंसा किए जाने पर प्रसन्न होती हैं।

प्रशंसा को बढ़ा कर चापलूसी की सीमा तक पहुँचा देना हममें से अधिकाँश लोगों को बुरा लगता है। हम सब कुछ ऐसे मनुष्यों को जानते हैं जो इतने अभिमानी हैं कि उनको अच्छी से अच्छी बात भी प्रसन्न नहीं कर सकती। परन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। यदि हममें अपने सम्बन्ध में कुछ भी अनुपात-बुद्धि हैं तो हमें झट पता लग जाता है कि

हमारी उचित से अधिक प्रशंसा की जा रही है। ऐसी प्रशंसा कटु-आलोचना के समान ही दुखदायी हो सकती है।

कभी-कभी किसी जन-समूह में हम किसी व्यक्ति के सम्बंध में कहे गये अपने अच्छे शब्दों में इतने फँस जाते हैं कि हम से उसकी उचित से अधिक प्रशंसा हो जाती है। अन्त में जब हम बोलना बंद कर देते हैं तो उससे वार्तालाप में जो शून्य उत्पन्न हो जाता है उसे करने के लिए जिस व्यक्ति की हम प्रशंसा कर रहे थे वह हमारी बातों का खंडन करने लगता है।

इसी प्रकार कोई भी प्रशंसा जो सिर पर अचानक थप्पड़ मारने के सदृश हो उसका न कहना ही अच्छा है, क्योंकि इस प्रशंसा में और दूसरे व्यक्ति को बहुत छोटा करके दिखाने या ताना देने में बहुत थोड़ा अन्तर होता है।

कभी-कभी ऐसे ढंग से की गई प्रशंसा जिससे कि फिर सामान्य वार्तालाप पर आसानी से लौटा जा सके उस मनुष्य को जिसकी प्रशंसा की गई है बोलने पर कम विवश करती है—और वह उससे अधिक प्रसन्न हो जाता है जितना कि वह उसकी और अधिक प्रशंसा करने से होता। उदाहरणार्थ, प्रश्न पूछने जैसी एक साधारण सी बात भी कभी-कभी प्रशंसा का काम दे सकती है। यदि रामनाथ को यह कहने के स्थान में कि मैं समझता हूँ आपकी वाटिका बहुत सुन्दर है, आप अपनी वाटिका के सम्बन्ध में उस से कोई सलाह पूछें तो आप कई काम पूरे कर लेते हैं। आप उसे संकेत से बता देते हैं कि आप उसकी वाटिका लगाने की चतुराई की प्रशंसा करते हैं। आपने उसे बहुत से लोगों में से छाँट लिया है। आप के द्वारा की गई प्रशंसा को स्वीकार करने के लिए कुछ किए बिना ही वह आपको सलाह दे सकता है और वह अनुभव करने लगता है कि आप एक बड़े पारखी मनुष्य हैं।

जब कोई मनुष्य किसी काम में सफलता प्राप्त करने के कारण व्यक्तिगत गौरव प्राप्त कर लेता है, तो उसके प्रति अपना प्रशंसा का भाव प्रकट करने में हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। हम जानते हैं कि ऐसी प्रशंसा सुनते-सुनते और अनमने भाव से एक ही तरह उसका स्वीकार करते-करते वह थक गया होगा। यह वह स्थान है जहाँ हम उसे यह बताकर कि उसके बच्चे हमें कितने प्यारे लगते हैं; उसका घर, उसकी वाटिका और उसकी बैठक में लटकते हुए चित्र हमें कितने भाते हैं; बड़े लाभ के साथ अप्रत्यक्ष प्रशंसा का प्रयोग कर सकते हैं। परिणामतः, हम उसे बता रहे हैं कि हम उस चीज़ से प्यार करते हैं जिससे वह करता है। हम उसके विषय में जो कुछ कहें उसमें उसे सन्देह हो सकता है, परन्तु जिन चीज़ों से वह प्यार करता है उनके विषय में प्रकट किए गये हमारे प्रेम में वह कोई सन्देह नहीं कर सकता।

एक पति ने अपनी पत्नी की बड़ाई करते हुए कहा था— "जो कुछ तुम हो, उसके कारण नहीं, वरन् तुम्हारे मेरे साथ होने से जो कुछ मैं बन सका हूँ उसके कारण मैं तुम पर प्रेम करता हूँ।" वह स्त्री उन शब्दों को सुनकर इतनी प्रसन्न हुई जितनी कि वह कोई बहुमूल्य उपहार पाकर भी न होती। सचमुच, प्रशंसा करने का यह एक बहुत ही बढ़िया ढंग है।

प्रशंसा सामाजिक मेल-जोल के मार्ग को सुखद बना देती है। यह बार-बार होने वाले उस असन्तोष को दूर करने में सहायता देती है जिसका अनुभव हम में से अधिकाँश को अपने प्रति हुआ करता है। यह हमें नई सिद्धियों के लिए भी प्रोत्साहित करती है। एक दार्शनिक का कथन है कि प्रशंसा-पूर्ण शब्द संसार में सद्भाव के लिए सबसे प्रबल शक्ति होते हैं।

१०. दूसरों को समझने की कला

एक स्त्री कोई ८० वर्ष की हो चुकी थी। दुर्भाग्य के थप्पड़ भी उसे कुछ अधिक ही लगे थे। इस पर भी उसने अपने लिए और अपने पड़ोसियों के लिए इतना सुख उत्पन्न कर रखा था जितना कि किसी दूसरे ने कदाचित् ही किया हो। वर्षों से उसकी छोटी सी झोंपड़ी दुःखी हृदयों के लिए शरण बनी हुई थी। जब उससे उसकी शान्ति का रहस्य पूछा गया तो उस ने उत्तर दिया, मुझे यह शान्ति तथा प्रसन्नता तब प्राप्त हुई थी जब मैंने दूसरों के दोष ढूँढ़ने की बुरी लत्त छोड़ दी थी।

मानव-प्रकृति का दूसरा कोई वाक्-छल इसके समान व्यापक तथा विद्वेषपूर्ण नहीं। हम में से सब एक या दूसरे समय में इस निर्दयता के अपराधी रहे हैं। और हम में से अनेक इस का निशाना बने हैं।

हमें प्रतिदिन सुनने को उपदेश मिलता है कि कभी किसी की निन्दा न करो। परन्तु लोग जितना कम इस उपदेश पर आचरण करते हैं उतना कम किसी दूसरे उपदेश पर नहीं।

इस बुराई में बिना सोचे-समझे प्रवृत्त होने से निरपराध लोगों का कितना अप्रतिकार्य अनिष्ट हुआ है।

किसी व्यक्ति ने अपने एक मित्र पर झूठे आरोप लगाए। तब वह मुहम्मद साहिब के पास जाकर पूछने लगा कि मैं अपने इस पाप का क्या प्रायश्चित करूँ। मुहम्मद ने उसे उत्तर दिया, "गाँव में प्रत्येक पैड़ी पर पण्डुक का एक एक पंख रख आओ"

जब अगले दिन वह व्यक्ति मुहम्मद के पास आया तो वे उससे बोले—"अच्छा अब जाकर ये सब पंख इकट्ठे कर लाओ।"

उस व्यक्ति ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "यह तो असंभव है—रात भर आँधी चलती रही है, और पंख ऐसी बुरी तरह बिखर गये हैं कि अब उनका मिलना कठिन है।"

मुहम्मद ने कहा—"बिलकुल ठीक। यही बात तुम्हारे अपने पड़ोसी के विरुद्ध बेपरवाही से कहे हुए शब्दों की है।"

एक कवि कहता है, "हठीलेपन की हम निन्दा करते हैं, परन्तु दृढ़ता की हम उपेक्षा कर देते हैं। इनमें पहली चीज़ तो हमारे पड़ोसी का विशेष गुण है, और दूसरी हमारा अपना।"

हम क्यों अपने दोषों को तो सजा कर और दूसरे के दोषों को मैला बनाकर दिखाते हैं?

दूसरों पर दोष लगाने का संवेग एक ऐसा प्रतिरक्षात्मक उपाय है जो हमारी प्रकृति में बहुत गहरी जड़ जमा चुका है। मनोविज्ञानियों का कहना है कि यदि आप किसी मनुष्य की त्रुटियाँ मालूम करना चाहते हैं तो उन दोषों पर ध्यान दीजिए जिन को दूसरों में उसकी आँख सब से पहले देखती है।

एक स्त्री सदा अपनी पड़ोसिन की मलिनता की शिकायत किया करती थी। वह एक दिन अपनी एक सहेली को खेंच कर बड़े उल्लास के साथ अपनी खिड़की के पास ले गई और पड़ोसिन के घर की ओर संकेत करके बोली, "रस्सी पर पड़े उन कपड़ों को तो देखिए, कैसे गंदे और मटियाले हैं!"

सहेली ने मृदुता से उत्तर दिया, 'यदि तुम अधिक निकट से देखोगी तो तुम देखोगी कि उसके कपड़े नहीं, वरन् तुम्हारी खिड़कियाँ मैली हैं।'

दूसरों का निर्णय करने में अनुकम्पा के अभाव का कारण यह होता है कि हमें ज्ञान नहीं होता कि जिस को हम बुरा ठहरा रहे हैं वह बुरे कर्म क्यों करता है। हमें अपने हृदय में इस चीनी लोकोक्ति को रखना चाहिए, "अपने संबंध में दूसरे की गलत धारणा से मत घबराओ, वरन् बोध न होने पर घबराओ।" दूसरों के साथ अपने दैनिक संबंधों में सहानुभूति की आँख के साथ उपरितल के नीचे देखने में असफल रहने से किसी की ख्याति को मलिन करने की जोखिम हम निरन्तर उठाया करते हैं।

एक समय की बात है, एक सुन्दर विधवा अपने तीन बच्चे लेकर एक गाँव में रहने के लिए आई। कुछ ही सप्ताह में सारे गाँव में जिधर देखो उधर उसीकी चर्चा सुन पड़ने लगी। "वह बड़ी सुन्दर है, कई पुरुष उसके यहाँ जाते देखे गये हैं... उसे घर चलाना नहीं आता...उसके बच्चे गलियों में इधर-उधर घूमते हैं और दूसरे लोगों के द्वार पर खड़े रहते हैं... वह आलसी है और अपना अधिकांश समय खाट पर लेट कर पढ़ने में बिताती है।"

एक दिन वह सुन्दर विधवा डाक घर के निकट एकाएक गिर गई। तब सच्ची बात का पता लगा। उसे एक असाध्य रोग हो रहा था। वह घर का काम-काज न कर सकती थी। जब औषध से भी उसकी पीड़ा शान्त न होती थी तो वह अपने बच्चों को बाहर भेज देती थी। उसने कहा, "मैं

चाहती हूँ कि वे मुझे सदा प्रसन्न और प्रफुल्ल-चित्त समझें। मैं अकेले में इस संसार से चल देना चाहती हूँ, ताकि उनको कभी पता न लगे।"

उसके घर आने वाले पुरुष उसका पारिवारिक डाक्टर, उसकी जागीर की देख-भाल करने वाला उसका मुँशी और उस का देवर थे।

उसके जीवन के शेष मास में सारा गाँव उसके साथ बड़ा दयापूर्ण व्यवहार करता रहा, परन्तु झूठे लोकापवाद ने अपने को कभी क्षमा नहीं किया।

"जिन कष्टों तथा प्रलोभनों का सामना उस व्यक्ति को करना पड़ा है, यदि मुझे भी उन्हीं का सामना करना पड़ता, तो क्या मैं उतना ही या उससे भी अधिक बुरा न होता ?" अपने-आप से यह प्रश्न करने से हम दूसरों को बुरा ठहराने में उतावली करने से बच सकते हैं। दूसरों के छिद्रान्वेषण की लत्त हमारे अपने चरित्र के उस अमनोहर छिद्र को उद्घाटित करती है, जिसका नाम आत्म-साधुता है। हमारी वृत्ति ही कहती प्रतीत होती है कि दूसरों में मैं सब बुराई देख रहा हूँ, इसलिए मैं आप अवश्य ही अच्छा हूँ। महात्मा ईसा ने अपने-आप विचारपति बने हुए ऐसे ही लोगों की भर्त्सना करते हुए कहा था, "आप में से जिस ने कभी पाप नहीं किया वही पहले इस स्त्री पर पत्थर फेंके।" ईसा के इसी उपदेश को सदा स्मरण रखने के भाव से कहते हैं एक बड़े व्यापारी ने अपने डेस्क पर एक पत्थर रख छोड़ा था, जिस पर मोटे अक्षरों में "पहले" लिखा था।

दूसरों को बुरा या दोषी ठहराने की लत्त को दबाने के लिए इन चार सरल नियमों से सहायता मिल सकती है।

पहला—इस बात का पूर्ण निश्चय कर लो कि आपको सभी तथ्यों का ज्ञान है, ताकि आपकी साक्षी केवल अप्रत्यक्ष ही न हो।

अशुद्ध निर्णयों को ध्यानपूर्वक सुनने से हम पर भी उनका दायित्व आ जाता है। "शान्ति की खोज" नामक पुस्तक में उसका लेखक लिखता है—"जब किसी दूसरे को हानि पहुँचाने वाली मैं कोई औत्सुक्य-वर्धक बात सुनता हूँ, तो मैं उस पँवाड़िया के हेतुओं और मनोवृत्ति को नापने का यत्न करता हूँ, और फिर जो कुछ कहा गया है उस सारे को या तो निकाल फेंकता हूँ या फिर उस बात का पता लगाने का यत्न करता हूँ जिससे कि यह कहानी आरम्भ हुई।" जिस व्यक्ति के विषय में प्रलाप किया जा रहा है उसे उतावली में बुरा ठहराने के पूर्व आप भी यही कीजिए।

दूसरा—स्मरण रखिए कि दूसरे का अपराध चाहे कितना भी सुनिश्चित क्यों न देख पड़े, फिर भी उस अपराध को कम करने वाली अवस्थाओं का होना सम्भव है। कई वर्ष पहले की बात है, अमेरिका के सियोक्स इण्डियनों में एक बड़ा अनुष्ठान हुआ करता था। एक बड़ा वीर मनुष्य दूसरी इण्डियन जातियों से मिलने के लिए प्रस्थान करता था। वह आकाश की ओर हाथ उठा कर प्रार्थना करता था—"परम आत्मा मुझे सहायता दीजिए कि जब तक मैं दूसरे के साथ दो सप्ताह तक न रह लूँ तब तक मैं उसके बारे में कोई धारणा न बनाऊँ!"

तीसरा—दूसरों के दोषों के स्थान में उनके सौंदर्य या सद्‌गुणों पर ध्यान देकर दूसरों के सम्बन्ध में निर्णय देने के

अपने स्वभाव को "उलटा मरोड़" दो। एक वक्ता जब कोई भाषण देने लगता, तो पहले काले तख्ते पर एक सफेद कागज़ का वर्ग थपथपाता। तब वह केन्द्र में एक नन्हा-सा काला चिह्न लगा देता। फिर वह पूछता, "आप क्या देखते हैं?" सभी उपस्थित जन उत्तर देते, "एक काला धब्बा"। तब वक्ता कहता, "क्या आप में से कोई भी सफेदी के एक बड़े वर्ग को नहीं देख रहा?"

लोगों के सद्गुणों को देखने का स्वभाव अपने में विकसित कीजिए। इस पर टिप्पणी कीजिए। अच्छी गपशप की कला का अभ्यास कीजिए। यह एक विस्मय की बात है कि दूसरों के सर्वोत्तम गुण खोजने के अभ्यास से किस प्रकार हमारी अपनी आत्माएँ विशाल हो जाती हैं। जिस समय आप किसी दूसरे के सम्बन्ध में कटु निर्णय देने के लिए झुके हों तो अपने दर्पण में देखिए। आपको अपना मुखमण्डल बड़ा ही चिड़चिड़ा देख पड़ेगा। तब किसी की प्रशंसा कीजिए। आप देखेंगे कि दयालुता आपके चेहरे को प्लावित कर रही है।

चौथा—दूसरे के पापों का निर्णय करने का सारा काम भगवान् पर छोड़ दो। बेजा तौर पर परमेश्वर के कार्यों को अपने हाथ में लेना धृष्टता ही नहीं, भगवान् का अनादर भी है। जगन्नियन्ता ही मनुष्यों के भला-बुरा होने का निर्णय कर सकते हैं। हमें इस काम को अपने हाथ में लेने का कोई अधिकार नहीं।

---

११. स्त्रियों की गुप्त भाषा

संसार में जिस भाषा का सब से अधिक व्यवहार होता है उसका न तो कोई नाम है और न कोई शब्द-कोष ही। यदि आप स्त्री हैं तो आप प्राय: बाल्यावस्था से ही इसे बोल सकती रही हैं। यदि आप पुरुष हैं तो ५० वर्ष तक अध्ययन करने पर भी आप इसे सीख नहीं सकते।

मेरा तात्पर्य शब्दों, स्वर के चढ़ाव-उतार, भौंहों को हलका सा उठाने और बोलते-बोलते ठीक अवसर पर रुक जाने के उस अद्‌भुत मेल से है जो स्त्रियाँ ऐसी बातें करने के लिए तैयार कर लेती हैं :—छोटे से सजीव द्वन्द्वयुद्ध को ऐसे कर्ण-मधुर स्वर में जारी रखना कि जिसे पुरुष समझता है कि वे एक-दूसरे का बखान कर रही हैं; किसी अनुपस्थित, जनता में अप्रिय स्त्री पर झुलसा देने वाली टिप्पणी करना, परन्तु पुरुषों पर ऐसा संस्कार डालना मानो वह उनकी परम सखी है; भद्दी सामाजिक स्थितियों के तनाव को हलका करने के लिए लाज रखने वाले कृपापूर्ण, अनुकूल संकेत करना।

स्त्रियों की यह अद्‌भुत दुहरी बातचीत पुरुषों की समझ से बाहर होती है। यह दुहरी बातचीत न केवल जटिल सामाजिक परिस्थितियों को कोमल ही बना देती है, वरन् स्त्रियों की लड़ाइयों को शान्ति-भङ्ग करने से रोकती भी है।

उदाहरणार्थ, एक दम्पत्ति दूसरे दम्पत्ति के यहाँ पाहुना होता है। जब वे वहाँ से लौटने लगते हैं तो घरवाली सुकुमार भाव से आह छोड़ती है। इस से कई पुरुष मत्त से हो जाते हैं।

कई बार ऐसा होता है कि दूसरे के घर खाना खा चुकने के उपरान्त पाहुने जब विदा होने लगते हैं, तो घरवाली कहती है कि थोड़ा और तो ठहरो, फिर चले जाना। पुरुष पाहुना तो कुछ देर और रुक जाने के लिए तैयार हो जाता है, परन्तु उसकी पत्नी उसे सहसा खींच कर बाहर ले आती है। कदाचित् घरवाली ने "एक प्याली चाय तो और पी जाइए" ऐसे स्वर में कहा था, कि जिससे "घर जाने के पहले" का भाव वायु में लटकता रह गया। स्त्री स्त्री के भाव को समझने में समर्थ होती है। उस पाहुने की स्त्री ने घरवाली के संकेत को तुरन्त ताड़ लिया और समझ गई कि अब यहाँ और रुकना ठीक नहीं। बस वह पति को खेंच लाई।

कई पुरुषों को इस मूर्खों को फँसा लेने वाले फंदे को न समझने के कारण बड़ा दुःख उठाना पड़ा है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए, दो दम्पती साँझ को कोई तमाशा देख कर घर लौट रहे हैं। रास्ते में पहले दम्पती नं० १ का घर पड़ता है। वहाँ पहुँच कर जब वे एक दूसरे को 'नमस्ते' करते हैं, तो नं० १ की पत्नी बड़े रमणीय ढंग से पूछती है, "भीतर चल कर एक प्याली चाय तो पीते जाइए।"

यदि उसने हृदय से कहा होता, "भीतर आकर आप को हमारे साथ एक प्याली चाय पीनी ही पड़ेगी", तो अधिक संभव था कि पत्नी नं० २ उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लेती। परन्तु स्वाभाविक से अधिक शिष्ट परीक्षात्मक स्वर को सुनते ही स्त्री झट पहचान जाती है कि कहने वाली हृदय से नहीं, केवल ऊपर से चाय के लिए कह रही है।

दुर्भाग्य से, अपनी पत्नी के इनकार करने के लिए कोई अच्छा बहाना प्रस्तुत कर सकने के पूर्व ही पति नं० २ यह

कहता हुआ नं० १ के घर के भीतर चला जाता है, "बहुत अच्छा, इससे बढ़ कर और क्या प्रसन्नता की बात होगी। मुझे और कान्ता को अब कोई काम नहीं। घर जाकर केवल खाना ही खाना है।" इस प्रकार जब दम्पती नं० २ दम्पती नं० १ के घर के भीतर प्रवेश करता है तो उन्हें एक ऐसा कमरा मिलता है जिसमें चारों ओर चीज़ें बिखरी पड़ी हैं, उनके सामने घरवाली मुँह बनाए सड़े बिस्कुट परोस रही है और मन में कह रही है कि ये निभागे इस असमय में क्यों आ धमके।

कुत्सित सामाजिक परिस्थितियों के इस क्षेत्र में अर्थपूर्ण विराम भी बहुत ही सुविधाजनक होता है। जब श्रीमती विमला अपनी सहेली रक्षा को फोन पर कहती है कि मेरी चार ममेरी बहनें मुझे मिलने नगर में आई हुई हैं और आप जो पार्टी दे रही हैं उसमें क्या मैं उनको भी अपने साथ लेती आऊँ, तो रक्षा उसे मना करते हुए यह नहीं कहती कि उन्हें पार्टी में फूँकने के लिए लाना है। इसके स्थान में वह हार्दिक भाव से उत्तर देती है, "हाँ, उन्हें अवश्य लेती आइए"—परन्तु ऐसा कहने के पहले वह कई क्षण तक चुप रहती है। इससे विमला को पता लग जाता है कि यदि वह नहीं चाहती कि रक्षा आगे अपने किसी सामाजिक समारोह में उसे न बुलाए तो अच्छा यह है कि वह अपनी ममेरी बहनों के लिए मोहन हलुआ और रसगुल्ले खरीद कर अपने घर पर ही उनकी चाय पार्टी की व्यवस्था कर दे।

एक दूसरी कला जिसका उपयोग स्त्रियाँ कभी-कभी करती हैं, एक बिलकुल उलटे अर्थ वाला वक्तव्य होता है। पुरुष को अनुभव करना चाहिए कि जब उसकी पत्नी कहती

है, "शीतकाल आ रहा है। राधा ने नई ऊनी कमीज़ बनवाई है। पर मैं तो अपनी फटी-पुरानी कमीज़ से ही गुज़ारा कर लूँगी," तब वह हिन्दी नहीं, वरन् अपनी पुरातन मातृ-भाषा बोल रही होती है। उसका वास्तविक भाव यह होता है, "आप अभी तक मेरे लिए कोई गरम कपड़ा खरीद कर नहीं लाए। इस लिए मैं चाहती हूँ कि आप मेरी कमीज़ के लिए कपड़ा लाना न भूलें।" जो पति "मैं अपनी फटी-पुरानी कमीज़ में ही गुज़ारा कर लूँगी", का शाब्दिक अर्थ लेकर पत्नी के लिए नई गरम कमीज़ नहीं सिलाता वह भारी भूल करता है। अपनी इस भूल के कारण उसे बहुत तंग होना पड़ता है।

यदि पत्नी को उलटे शब्दों में ही अपना ठीक भाव प्रकट करने का अभ्यास हो गया हो, तो पति को उसके साथ बार-बार और जल्दी से सहमत होने से बचना चाहिए। उदाहरणार्थ, किसी बनी ठनी सुन्दर युवती को देख कर पति कभी थोड़ा सा आकर्षित हो जाता है। पत्नी यह बात भाँप जाती है। तब वह पति से कहती हैं, "देखिए न, वह ललिता कितनी सुन्दर है।" अब जो पति अपनी पत्नी की हाँ में हाँ मिलाते हुए कह देता है कि हाँ, 'वह ललिता सचमुच ही रूप-राशि है,' वह अपने लिए भारी विपत्ति मोल ले लेता है।

स्त्री जो कुछ कहती है उस का वास्तविक अर्थ क्या होता है, इस बात को समझना बड़ा कठिन होता है। बड़े बड़े समझदार पुरुष भी इस में भूल कर जाते हैं। एक समय की बात है, एक समारोह में दो युवतियाँ आपस में नौक-झोंक कर रही थीं। समारोह में आई दूसरी सब स्त्रियाँ उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुन रही थीं। जब उत्सव समाप्त हो गया और लोग अपने अपने घर के लिए चल पड़े, तो रास्ते में एक स्त्री ने

अपने पति से पूछा, 'आप ने वह लड़ाई देखी ?" पति हक्का-बक्का हो कर पूछने लगा, 'कौन सी लड़ाई ?"

पत्नी ने उत्तर दिया, "वह लड़ाई तो तब आरम्भ हुई जब दया ने उस साँवले रंग की चटकीली युवती से, जो उस के पति पर डोरे डाल रही थी, कहा कि वह उन कपड़ों में 'कितनी सुहावनी' लगती है। यह स्पष्ट था कि उस साँवली युवती ने भड़कीली पौशाक बनवा कर लोगों के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने के उद्देश से बहुत पैसे खर्च किए थे। उसे अब मोहिनी कहने का वास्तविक अर्थ यह था कि तू ने चाहे कितनी ही कीमती पोशाक पहन रखी है फिर भी तू परी नहीं, गधी लगती है।

उसका पति अपनी पत्नी की बात सुनकर विस्मित रह गया। वह बोला, बाद को तो वे खूब घुल-मिल कर बातें कर रही थीं। उस ने यह भी कहा कि वास्तव में वह साँवली तरुणी तो अपने को नीचा बता रही थी और दया की स्तुति कर रही थी।

पत्नी ने उत्तर दिया, "यह तो रहा आप का विचार। अब उस का एक स्तुति-वचन लीजिए। दया एक दूसरी लड़की से लोक-व्यवहार पर किसी नई पुस्तक की चर्चा करके अपना बड़प्पन प्रकट करने का यत्न कर रही थी। इस पर वह साँवली रमणी बोली, "आप तो एक दीप्तिमान हीरक हैं। आप ने इतना अधिक पढ़ा है। मैं अभागिनी तो आपके सामने कुछ भी नहीं। मुझे तो कुछ भी ज्ञान नहीं। यदि मुझे भी अधिक समय मिले तो मैं भी ऐसी अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ पाऊँ।"

'तब उस का पति बोला, 'ठीक, ठीक !'

बहुधा इस भाषा का अर्थ उसे बोलने के स्वर पर ही निर्भर किया करता है। इस प्रकार कोई स्त्री कह सकती है, 'मैं समझती हूँ कि वह युवती बहुत सुन्दर है', और एक दर्जन अर्थों में से उस के इस वाक्य का कोई भी एक अर्थ समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ––(१) यदि यह वाक्य प्रसन्नता-पूर्वक और निष्कपट भाव से कहा गया है, तो अधिक सम्भवतः इस का अर्थ यही है कि वह सचमुच बहुत सुन्दर है। (२) हलकी सी लड़ाई के भाव से, पहले शब्द पर बल दे कर बोलने से, श्रोतागण पर यह संस्कार पड़ता है कि वह श्रीमती साधारण जनता में इतनी अप्रिय है कि उसके पक्ष में कोई साहसी व्यक्ति ही कुछ कह सकता है। (३) फीका, भाव-व्यंजना-शून्य स्वर इस विचार का सूचक होता है कि वह बड़ी ही प्राण-खाऊ स्त्री है और (४) 'बहुत सुन्दर' को एक हलके, धोखा देने वाले ढंग से चबा कर बोलना इस बात का द्योतक होता है कि कहने वाली उस स्त्री के सम्बन्ध में बहुत कुछ और कह सकती थी और सम्भवतः अच्छा सुयोग मिलने पर कहेगी भी।

महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि जो स्त्रियाँ इस में भाग ले रही हैं वे कभी इस बात का खुला संकेत न करें कि वे उस बात को समझती हैं जो वस्तुतः कही जा रही है। इस प्रकार कोई भी स्त्री किसी छिपे हुए घूँसे या ली हुई चुटकी का उत्तर 'आप का भी परिधान तो कोई अलौकिक नहीं है !" से नहीं देगी। परन्तु हो सकता है कि वह उत्तर में कहे, 'आप का परिधान भी बहुत सुन्दर है। चार वर्ष हुए मेरी बूढ़ी

बूआ के पास भी ऐसा ही जम्पर था। वह भी उसे बहुत पसंद करती थी।'

इस गुप्त भाषा से कई प्रकार की जटिलताएँ तो उत्पन्न हो जाती हैं, परन्तु इस के साथ ही इसके कई प्रत्यक्ष लाभ भी हैं। परन्तु यदि किसी पुरुष के मन में इस गुप्त भाषा को सीखने की इच्छा उत्पन्न हो तो उसे चाहिए कि वह इसे सीखने का यत्न करने के स्थान में चीनी भाषा सीखने पर परिश्रम करे, क्योंकि चीनी भाषा सीखना इससे कहीं अधिक आसान है।

---

१२. अच्छी चिट्ठी कैसे लिखी जाती है

एक व्यक्ति को किसी काम के लिए बहुत से मटियाले कपड़े की आवश्यकता थी। उसने दो ठेकेदारों को पत्र लिख कर टेण्डर माँगे। उन में से एक के उत्तर के प्रारम्भिक शब्द इस प्रकार थे—"मैं आपको विशेष रूप से सस्ते दामों पर माल दे रहा हूँ। इस का कारण यह है कि इस समय हमारी दूकान पर बहुत मंदा हो रहा है। मुझे कुछ लोगों का ऋण भी चुकाना है। आप के पास माल बेचने से ऋण चुकाने में मुझे बड़ी सहायता मिलेगी।"

दूसरे ठेकेदार की चिट्ठी का आरम्भ इस प्रकार होता था—

"मैं आप को बड़ा टिकाऊ और सुन्दर कपड़ा दे सकता हूँ। इसका रंग पक्का है। यह शीघ्र मैला नहीं होता और यदि इसे ध्यान से पहना जाय तो दो वर्ष से कम नहीं चलता।"

दूसरे मनुष्य को काम मिल गया। क्यों? क्योंकि उस ने उस व्यक्ति को वह बात बता दी जो वह जानना चाहता था, न कि यह कि इस काम से ठेकेदार को कितना लाभ होगा। उसने अच्छी चिट्ठी लिखने के प्रथम नियम का पालन किया था। वह नियम है—जिस को आप चिट्ठी लिख रहे हैं उस की समस्याओं का विचार करो, न कि अपनी समस्याओं का।

एक ढंग की चिट्ठी लिखने से हम दूसरे के पास अपना माल बेच सकते हैं, किसी पद पर अपनी नियुक्ति करा

सकते हैं, किसी लड़की का मन मोह कर उसे विवाह के लिए सम्मत कर सकते हैं। इस के विपरीत, भद्दे ढंग से चिट्ठी लिख कर इन सब कामों में विफल हो जाते हैं।

जब मनुष्य कोई काम पाने के लिए किसी को चिट्ठी या आवेदन-पत्र लिखता है तब उसका मन केवल उसके अपने आप, उसके उद्देश्य और उसकी अपनी आकांक्षाओं के संबंध में ही लंबी चौड़ी बातें लिखने के लिए बहुत ललचाया करता है। आवेदन-पत्रों की चिट्ठियाँ ऐसी भी देखने में आई हैं जिनका आरम्भ इस प्रकार होता था—"प्रिय महोदय, मैं ठीक वैसा मनुष्य हूँ जैसा आप ने अपने विज्ञापन में वर्णित किया है। मुझे इसी समय नये काम में इस लिए दिलचस्पी है क्योंकि मैं अपनी वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट नहीं हूँ।..." काम लेने की यह एक निर्बल रीति है। जो मालिक काम के लिए नौकर माँगता है उसे इस बात में कि आवेदक को काम पाने की क्यों आवश्यकता है, क्वचित् ही उतनी दिलचस्पी होती है जितनी कि उसे अपना काम ठीक ठीक कराने में।

प्रभावोत्पादक चिट्ठी लिखने के लिए दूसरा नियम यह है—**आडम्बर न करो**। सर्वोत्तम चिट्ठियाँ वे होती हैं जो इस प्रकार लिखी जाती हैं मानो आप बात-चीत कर रहे हैं। गोल-मोल, वनावटी सूत्र असंगत होते हैं। जो व्यापारी ऐसे वाक्य लिखता है, "आप का १४ दिनांक का पत्र मिला..." आप के २३ जुलाई के पत्र की बात से मैं सहमत हूँ..." "आप के दिनांक १५ के पत्र की पहुँच लिखी जाती है" वह पढ़ने वाले पर अपने संबंध में यह संस्कार डालता है कि वह एक आत्म-प्रशंसा करने वाला दाम्भिक व्यक्ति है

जिस के मन में उस मनुष्य के प्रति कोई मित्रोचित भाव नहीं जिसे कि वह चिट्ठी लिख रहा है।

अगला नियम है—"शब्दों का उपयोग मितव्ययिता के साथ करो।" एक युवक ने अपने बड़े अधिकारी को इस प्रकार चिट्ठी लिखी :–"आपके पत्र के उत्तर में, जिसमें आपने हमारा ध्यान इस बात की ओर दिलाया है कि हम ने कपड़े के थानों की संख्या गलत लिख दी है, मैं हमारी भूल के लिए क्षमा माँगना चाहता हूँ।" उसने डाक में छोड़ने से पहले जब अपनी चिट्ठी एक मित्र को दिखाई तो मित्र ने उसे काट-छाँट कर इस प्रकार छोटा कर दिया–"भूल हमारी है और हमें इस के लिए खेद है।" इन थोड़े शब्दों में ही वह सारी बात स्पष्ट रूप से आ गई जो वह कहना चाहता था। इस में सारी अनावश्यक जानकारी छोड़ दी गई थी।

रामनाथ की मौसी एक छोटे से गाँव में रहती थी। जब कभी वह उस गाँव का वर्णन करते हुए चिट्ठी लिखती, तो ऐसा लगता मानो वह गाँव एक अद्‌भुत स्थान है। उसने वसन्त के दिनों में एक बार अपने भानजे को लिखा—"फाल्गुन मास में ही वहाँ ऋतु इतनी गरम है कि पेड़ों को फाड़-फाड़ कर पत्ते बाहर निकल रहे हैं। परन्तु मेरे साथ के ही मकान में बेचारी बुढ़िया धनकौर अभी तक खाट पर लेटी-लेटी धूप में गठिया को भगाने का यत्न किया करती है।"

रामनाथ की दूसरी मौसी भी उसी गाँव में रहती है। उस ने भी उसी वसन्त में रामनाथ को चिट्ठी लिखी: "तुम कल्पना नहीं कर सकते कि इसी फाल्गुन मास में यहाँ ऋतु कितनी गरम, कितनी सूखी और कितनी बेचैनी पैदा करने वाली

हो गई है। इससे अधिक संभव यही जान पड़ता है कि इस वर्ष गरमी बहुत अधिक पड़ेगी और सूखा हो जाएगा। बेचारी धनकौर को बड़ा कष्ट है। वह कहीं भी आ जा नहीं सकती।"

इस बात का पता लगाना कुछ भी कठिन नहीं कि लोग इस दूसरी मौसी से पत्र-व्यवहार करना क्यों पसन्द करते हैं। वह एक दूसरे महत्त्वपूर्ण नियम का पालन करती है: "सुनिश्चित तथा स्पष्ट बात पर ही बल दो।"

किसी की मृत्यु पर समवेदना प्रकाशन के लिए लिखी गई छोटी सी चिठ्ठी में भी सुनिश्चित तथा सुखदायक बना जा सकता है। "आपके दारुण दुःख से हमारे हृदय दुःखी हैं," इस जैसे वचन प्रायः निष्कपट भाव लिए होते हैं। परन्तु आशापूर्ण, आगे की ओर देखने वाले विचार ऐसी चिट्ठियों को और भी अधिक सान्त्वनादायक तथा उपयोगी बना देते हैं।

नीचे एक समवेदना की चिट्ठी दी जाती है। यह एक स्त्री को उसके पति के एक सहयोगी ने लिखी थी।

"प्रिय बहन, कौशल्या और मैं आज आपकी याद कर रहे हैं। हम जानते हैं कि भगवान् की कृपा से आप वीरतापूर्वक आगे बढ़ रही हैं। कल रात्रि को हम उस परिकल्पना के विषय में बातें कर रहे थे जो भाई भूमानन्द जी को सबसे अधिक प्रिय थी। प्रत्येक व्यक्ति उस काम को पहले से भी अधिक शक्ति के साथ आगे ले जाने के लिए दृढ़संकल्प है। आप देखोगी कि उनकी परिकल्पना से हमें सदा प्रेरणा मिलती रहेगी और हम कभी अनुभव नहीं करेंगे कि ये हम से दूर चले गये हैं।"

व्यापार की चिट्ठियों में उत्साह बढ़ा कर ऊपर उठाने का यह काम और भी अधिक महत्वपूर्ण है। मकान बनाने का सामान बेचने वाले एक व्यापारी ने देखा कि उस की छत्त पर डालने की नये नमूने की खपरैलें, यद्यपि बढ़िया हैं, उतनी अच्छी नहीं बिक रही हैं जितनी कि पुराने नमूने की बिकती थीं। पता लगा कि जिस मनुष्य के सिपुर्द आर्डर को पढ़ कर ग्राहक को माल भेजने का काम था वह ग्राहकों को इस प्रकार की चिट्ठी लिखा करता है:—"प्रिय श्री ··, मुझे खेद है कि जिस प्रकार की खपरैल के विषय में आप ने पूछा है अब हम वैसी खपरैल नहीं रखते! परन्तु हमारे पास एक नये नमूने का खपरैल है जो संभव है आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी।"

इस क्षमा-प्रार्थना-सूचक तथा निषेधार्थक मार्ग को परिवर्तित करके इस प्रकार बना दिया गया: "प्रिय श्री···, अपनी नई खपरैलों के नमूने आप की सेवा में भेजते हुए मुझे प्रसन्नता होती है। जिस खपरैल के बारे में आपने पूछा है उसकी अपेक्षा यह क्या रंग और क्या बनावट दोनों की दृष्टि से बढ़िया है। पुराने नमूने की खपरैल से यह बहुत उन्नत है। इस लिए हम ने पुराना नमूना अब बिलकुल बंद कर दिया है।"

दोनों चिट्ठियों में सच ही कहा गया था। परन्तु दूसरी में सुनिश्चित मार्ग ग्रहण किया गया था। फलतः, बिक्री तुरन्त बढ़ने लगी।

यह देख कर आश्चर्य होता है कि कितनी चिट्ठियाँ अनभिप्रेत लागडाट को प्रकट करती हैं। अगले दिन एक स्त्री को

एक दूकान से निम्नलिखित पत्र मिला—"क्योंकि आप कहती हैं कि जो प्यालियाँ आप ने हम से मँगाई थीं उन में से एक का मुठिया टूटा हुआ है, इसलिए हमें उसके बदले में दूसरी देनी होगी।" यह बात कहना कठिन है कि दूकान के व्यवस्थापक ने उस स्त्री की बात पर सन्देह किया, परन्तु उसके "आप कहती हैं" इन शब्दों में बेईमानी का अधम आरोप टपकता है। क्या ही अच्छा होता जो दूकान वाले लिखते–"हमें खेद है कि जिन प्यालियों के लिए आप ने आर्डर दिया था उनमें से एक आप को टूटी हुई पहुँची। निस्सन्देह हम तुरन्त इस बदले में दूसरी भेज देंगे।"

एक नगरपालिका के कार्यालय में कुछ अनाड़ी कर्मचारी भरे थे। जिन सम्पत्ति-कर या गृह-कर देने वाले नागरिकों के क्रोध को शान्त करने का प्रयोजन था उन्हीं को भद्दे ढंग से चिट्ठी लिख कर वे और भी रुष्ट कर देते थे। उनकी लिखी एक चिट्ठी इस प्रकार है—"यदि आप अपनी तैयार की हुई वस्तु का नमूना भेजें तो हम देखेंगे कि यह किसी काम की है भी या नहीं।"

जब एक अनुभवी अधिकारी ने यह चिट्ठी देखी तो उस ने अधीनस्थ कर्मचारियों को चिट्ठियों में सौजन्यपूर्ण, उपयोगी मनोभाव प्रकट करने की आवश्यकता समझाई। एक तरुण कर्मचारी एक विशेष रूप से कुपित करदाता के साथ, चिट्ठियाँ लिख कर, लम्बी बहस करता रहा था। पर उसे सफलता नहीं हुई थी। उपर्युक्त अनुभवी अधिकारी का उपदेश सुनने के उपरान्त उस कर्मचारी ने इस प्रकार चिट्ठी लिखी—

—"प्रिय श्रीसत्यनारायण, आप विश्वास करें या न करें, यह कार्यालय यहाँ आप को आप की समस्या के समाधान में सहायता देने के लिएही है।"

अपने दूसरे ही पत्र में श्रीसत्यनारायण ने स्वीकार कर लिया कि जिस समस्या के समाधान का वह यत्न कर रहा था उसने उसे उतना क्रुद्ध नहीं किया था जितना कि उन चिट्ठियों ने जो उसे नगरपालिका के कार्यालय से आती रही थीं।

परन्तु, सब नियमों से भी परे चिट्ठी का वह स्वर, वह झलक या वह गुण है जिसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती, और जो चिट्ठी लिखने वाले के व्यक्तित्व से ही प्रत्यक्ष रूप से निकलता है। यह सिखाया नहीं जा सकता, परन्तु सीखा जा सकता है। हाल में एक सज्जन एक बड़ी कम्पनी के प्रधान चुने गए थे। उनकी लिखी एक चिट्ठी आगे दी जाती है। इसके पाठ से मेरे उपर्युक्त कथन का अभिप्राय मालूम हो जाएगा—"प्रिय श्री···, आप वड़े उदार और विचारशील मित्र हैं जिन्होंने मेरे नये काम के संबन्ध में लिखने का कष्ट किया है। मैं आपकी शुभ कामनाओं का अन्तस्तल से आदर करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप अपनी उन शुभ कामनाओं में दो एक मंगल-प्रार्थना भी बढ़ा देंगे। अनेक ऐसे अवसरों का आना अनिवार्य है जब मुझे इन दोनों की आवश्यकता होगी। मेरा धन्यवाद—और केवल सर्वोत्तम।"

इस चिट्ठी की अनौपचारिकता तथा संक्षिप्तता पर ध्यान दीजिए। इस चिट्ठी में आवश्यकता से अधिक कोई बात नहीं कही गई। इस पर भी इसमें उतावली या आकस्मिकता का कोई भाव नहीं। यदि हम सोच-विचार और ध्यान से लिखें तो प्रत्येक चिट्ठी इसी प्रकार की प्रभावोत्पादक हो सकती है।

१३. चिन्ता का उपाय

पता लगाने पर मालूम होता है कि संसार में दस में से नौ मनुष्य ऐसी समस्याओं में डूब रहे हैं जिन को सुलझाना उन्हें नहीं आता। इस से प्रमाणित होता है कि प्रत्येक स्वाभाविक मानव प्राणी चिन्ता, भय, झंझट या अपराध-बुद्धि का शिकार है। तो भी, इस विश्वव्यापी अशान्ति की वर्तमानता में हम बहुधा लोगों को कहते सुनते हैं, "चिन्ता करना बन्द कर दो, सुस्ताओ, और इसे भूल जाओ।"—मानो अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए हमारा संग्राम एक अस्वाभाविक बात है।

सच्ची बात इस से उलट है। जब अपना काम या नौकरी छिन जाने का भय हो रहा हो, या जब जिस पर हम प्रेम करते हैं वह हम पर प्रेम नहीं करता हो, या हमें कोई रोग आ दबाए, या हम पर भारी ऋण हो जाय, या सामने असुरक्षित वृद्धावस्था हो, तब हम चिन्तित हुए बिना कैसे रह सकते हैं ?

एक विद्वान् का कथन है, "हमारी पीढ़ी का कोई भी मनुष्य, जिस में वास्तविकता तथा उत्तरदायित्व की परिपक्व बुद्धि है, भय से यथार्थ तथा अविकल मुक्ति का अनुभव नहीं कर सकता।" न ही हमारे लिए चिन्ता की ठेल से छुटकारा पाना अच्छा है। कारण यह कि अपनी परिस्थिति के साथ युद्ध हमारे दाय का एक भाग, मानव होने की जटिल जोखिम के व्यापार का एक अंश है। एक दूसरे मनीषी का

कहना है—"कभी हताश मत हो, परन्तु यदि तुम हताश हो जाते हो तो नैराश्य में ही काम करते जाओ।"

एक समय की बात है, एक प्रसिद्ध गीतिकार बड़े संकट में फँस गया। उसके दाहिने पार्श्व को पक्षाघात हो गया, उसका धन नष्ट हो गया, और उसके ऋणदाता उसे जेल भेजने की धमकी देने लगे। परन्तु उसके दुःख ने उसे ऐसी एड़ लगाई, जिससे उसने अपने जीवन का प्रबलतम उद्योग किया। उसने अशान्त और क्षुब्ध भाव से, प्रायः निरन्तर लिखना आरम्भ कर दिया और २४ दिन में एक ऐसी अमर गीतिका की रचना की जो बहुत ही लोकप्रिय हो गई और उससे उसे खूब आय हुई। यदि वह विश्राम करने लग जाता और अपनी चिन्ताओं को भुला देता तो न तो संसार को ऐसी उत्तम गीतिका मिलती और न उसे धन की ही प्राप्ति होती।

हम में से अधिकतर लोग अपनी समस्याओं के साथ लड़ाई लड़ने से डरते हैं, परन्तु यह लड़ाई पूरी तरह समाप्त हो चुकने के उपरान्त, हमें मानना पड़ता है कि यदि भय हमें इतना कठोर परिश्रम करने पर बाध्य न करता तो हम इतना अच्छा काम न कर सकते।

नैतिक रूप से भी, ज्यों-ज्यों हम संघर्ष करते हैं त्यों-त्यों हम बढ़ते हैं। कारण यह कि विवेक ने—जो हमारी सब से निर्मम चिन्ताओं का उद्गम है—मानव को उसी प्रकार नैतिक प्राणी होना सिखाया है जिस प्रकार कि उसके भयों ने उसे साहसिक होना सिखाया है। जीवन-कला पर एक प्रसिद्ध पुस्तक का लेखक कहता है—"मनुष्य को मानवीय होने के लिए भय और चिन्ता के रूप में मूल्य चुकाना पड़ता है। हमारी

चिन्ता के प्रति प्रवणता वह भूमि है जिस में हमारी मानवीय वृद्धि होती है।"

परन्तु यदि हमारी चिन्ताएँ हमारे लिए अच्छी हैं, तो कोई भी समझदार व्यक्ति इस बात की उपेक्षा नहीं करेगा कि इसके साथ ही उनके कारण कुछ ऐसे गड्ढे भी पैदा हो जाते हैं जो ऊपर से ढँके रहते हैं और जिन में हमारे गिर पड़ने की संभावना रहती है। हो सकता है कि वे डर हमारे हाथ से निकल जायँ और हमारे सफल दैनिक जीवन में हस्तक्षेप करें। या यह भी संभव है कि वे इतने बड़े तथा अस्पष्ट दीखने लगें कि उन्हें झाँसा देने के लिए हम वास्तविकता से परे भाग जाँय।

कोई भी व्यक्ति चिन्ता के अनुभवों को झाँसा नहीं दे सकता, परन्तु उनके साथ रहने में हम सब एक ऐसे प्रकार की बुद्धिमत्ता सीख सकते हैं जो उनके भार को हलका कर देगी। पहला उपदेश—'झूठी चिन्ताओं का ढेर लगा कर अपनी वास्तविक चिन्ताओं को मत बढ़ाओ।' सब कोई जानता है कि जो चीज़ें अधिक महत्त्व की नहीं वे किस प्रकार हमें हैरान करके हमारे निर्मल चिन्तन को नष्ट कर देती हैं। बहुधा बड़ी समस्या नहीं, वरन्, पहले से ही बहुत अधिक लदी हुई नाव पर सीपी-घोंघों जैसी निकम्मी वस्तुओं का ढेर लगा देने की भाँति, उस बड़ी समस्या पर जमी हुई छोटे-छोटे संदेहों और आशंकाओं की तहें और पपड़ियाँ ही हमें पराजित करती हैं।

न ही हमें अपनी वर्तमान चिन्ताओं में अतीत या भविष्य का बोझ और बढ़ा देना चाहिए। बहुधा हम रात को लेटे-लेटे यह सोच कर अपने को दुःखी किया करते हैं कि हमें ऐसा करना चाहिए था, या यदि ऐसा हुआ तो हम ऐसा करेंगे।

"क्या होगा यदि—" सब प्रकार की भयंकर आकस्मिक घटना की कल्पना करते हुए, हम नैराश्य में अपने आप से कहते हैं, "यदि ऐसा··हो गया तो फिर मैं क्या करूँगा ?" परन्तु जिस बात को स्मरण रखने की हमें आवश्यकता है वह यह है कि जो चीज़ इस समय हमें दुःख दे रही है, वह यदि कल हमें दुःख देगी भी, तो भिन्न रीति से देगी। अपनी समस्या को ठीक तरह देखने की सरलतम रीति यह है कि हम सोचें कि क्या अगले सप्ताह, अगले वर्ष इसका कुछ महत्त्व होगा ? एक मनुष्य का लड़का लूला हो गया। इस पर दुःखित होकर वह बोला, "मैं आजीवन इस भार को वहन न कर सकूँगा।" इस पर एक महात्मा ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"यह बोझ जितना भारी आज है कल भी इतना ही होगा। क्या तुम आज इसे वहन कर सकते हो ?"

इतिहास में सर्वाधिक दक्ष मनुष्यों में से कई ऐसे थे जो किसी समस्या को उसके यथार्थ रूप में देखने की बुद्धि खो बैठे थे। इसलिए उनकी चिन्ताओं ने उन्हें हांक कर ऐसे मार्ग पर डाल दिया था जिस ने उनका नाश कर दिया। यदि हम अपने आपके महत्त्व के भाव को कम कर सकें तो हम अपनी चिन्ताओं को भी बहुत घटा सकते हैं।

किसी समस्या को उसके ठीक ठीक रूप तथा अनुपात में देखने की यही बुद्धि हमारे अपराध के भाव को भी नियन्त्रण में रखने में सहायता देगी। सभी मानव प्राणी ऐसी विचार-हीन, आवेगजन्य बातें करते हैं जिनके फलस्वरूप उन पर लगातार विपत्तियाँ आने लगती हैं। दूसरे व्यक्ति को समझने की अयोग्यता या मूर्खता के कारण प्रत्येक व्यक्ति स्वर्ण संयोग खो देता है। प्रत्येक व्यक्ति कभी-कभी विचारहीन, स्वार्थपर

और दयाहीन होता है। हम परिणामों के सम्बन्ध में नैराश्य-पूर्ण हुए बिना नहीं रह सकते। परन्तु हम से कोई अन्याय हो गया है, इस कारण ही हमें अपने को मानव-जाति से निर्वासित नहीं अनुभव करने लग जाना चाहिए।

एक विचारक का कथन है कि सब मनुष्य प्राणी भूल-चूक करने वाले हैं, इस लिए जो मनुष्य अपने को भ्रमशील होना सहन नहीं कर सकता उसे अपने आपके साथ भी सद्भाव रखने के बहुत कम संयोग हैं। सन्ताप या नैराश्य द्वारा प्रेरित होकर किसी कर्म में कूद पड़ने के पूर्व हमें अपने आप से पूछना चाहिए, "क्या मैं यह काम इसलिए कर रहा हूँ, क्योंकि निष्कपट भाव से मैं समझता हूँ कि इससे स्थिति सुधर जायगी ?" या क्या मैं, उस छोटे बच्चे की भान्ति जिसे भिड़ ने काटा है, उन्मत्त की भाँति चक्राकार दौड़ रहा हूँ ? यदि हम कष्ट और अनिश्चितता से डर कर दूर भागने के स्थान में अपने को उनका सामना करने का प्रशिक्षण दे सकें, तो हम देखेंगे कि कई ऐसी बुद्धिमत्ता-पूर्ण और मर्यादित करने वाली बातें हैं जो हम कर सकते हैं। अपनी समस्याओं के समाधान की ओर एक छोटा सा पग भी उठाना अच्छा है। कारण यह कि एक समस्या का सामना करने से हमें दूसरी को सुलझाने की शक्ति मिल जाती है।

कॅनन वॅस्टकॉट नाम के एक विद्वान् का कथन था, "बड़े अवसर वीर या कायर नहीं बनाते, वे उनको केवल उघाड़ कर लोगों के नेत्रों के सामने प्रकट कर देते हैं। जब हम जागते या सोते हैं, हम सूक्ष्म रूप से बलवान् या बलहीन होते जाते हैं, और अन्त में कोई ऐसा निर्णयावसर आता है जो हमें दिखा देता है कि हम क्या बन गये हैं।"

कदाचित् हम में से प्रत्येक की सब से बड़ी मूर्खता अपने कष्टों को अपनी छाती के साथ चिपका लेना है। बहुधा हमारी बुरी से बुरी चिन्ताओं में से हमारा मार्ग निर्विघ्न बनाया जा सकता है, यदि हम किसी विश्वस्त मित्र का पथप्रदर्शन प्राप्त कर लें। परन्तु मानवी परिणामदर्शिता की भी एक सीमा है। वर्टरेण्ड रस्सल ने एक बार ठीक ही कहा था कि "बड़े अनिष्टों को सहन करने की यथेष्ट रीति बड़ी सान्त्वनाएँ ढूँढ़ना है।" इस खोज की चाबी ईश्वर-प्रार्थना है। "प्रभु, मुझे इस कष्ट से बचाइए", नहीं, वरन् "प्रभु, इसे सहन करने की मुझे शक्ति दीजिए।" और प्रभु से प्रार्थना करते हुए हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए मानो हमें ज्ञान है कि भगवान् हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर रहे हैं।

अन्तिम बात यह है कि,हम जितनी अधिक दूसरों की चिन्ता करेंगे उतनी ही कम हमें अपनी चिन्ता करनी पड़ेगी! हम कितने सुखी होंगे यदि हम अपने प्रयास को वृद्धि तथा पुनरभ्युत्थान में व्यग्र समूची सृष्टि के विशालतर प्रयास का ही एक अंग मान सकें। उस युद्ध में हमारी चिन्ताएँ मानव के अपने भाग्य को सुधारने के संकल्प के चिह्न बन जाती हैं।

दायी मनुष्यों के रूप में, हम प्रत्याशा नहीं कर सकते कि हमें जीवन में कभी कष्ट, भय और चिन्ता नहीं होगी। परन्तु हम अपनी समस्याओं का बुद्धिमत्ता, वीरता तथा धीरता-पूर्वक सामना कर सकते हैं। ऐसा करके हम न केवल अपने ही जीवन को अधिक शान्त बनाते हैं, वरन् हम मानवीय प्रतिष्ठा की राशि में भी अपना भाग डालकर उसे बढ़ाते हैं।

——

१४. पति के साथ कैसे निभाना चाहिए

एक सज्जन लिखते हैं, मेरी और मेरी भार्या की एक पुत्री है, रेवा। हम यह मान लेते हैं कि रेवा बड़ी होगी, उस का विवाह होगा और उसे अपने पति को प्रसन्न रखने की आवश्यकता होगी। निम्नलिखित उपदेश उसे इस काम में सहायता दे सकते हैं।

बेटी रेवा, पहली बात तो यह है कि अपने पति को अनुभव कराओ कि तुम उसे पसन्द करती हो। जब तुम्हारा पति बाहर काम पर से घर लौटे तो उस समय की तुम्हारे चेहरे की मुद्रा तुम्हारे दाम्पत्य जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण मुखभङ्गी सिद्ध हो सकती है। यदि वह देखेगा कि उस के आने पर तुम्हारा मुखमण्डल वैसा ही हँसता और खिला हुआ है जैसा कि वह उस समय होता है जब तुम्हारी सहेलियां तुम्हें मिलने आती हैं, तो वह अनुभव करेगा कि तुम उसे पसन्द करती हो और इस के लिए वह भी तुम पर प्रेम करेगा। परन्तु यदि तुम काम छोड़ कर उसके साथ बात चीत नहीं कर सकती (चाहे सहेलियों के साथ गप्प हाँकने और सिनेमा देखने के लिए तुम्हें समय मिल जाता हो), यदि अच्छी पत्नी होने के कारण तुम इतनी कार्य-व्यस्त हो कि अच्छी सखी बनने के लिए तुम्हारे पास समय नहीं, तो तुम्हारा पति एक मानव प्राणी के रूप में अपने को तुम्हारे लिए महत्त्वहीन अनुभव करने लग जायगा। ऐसी भी स्त्रियाँ हैं जो अपने पतियों पर प्रेम करती हैं और प्रत्येक पारिवारिक कर्तव्य का निपुणता के साथ पालन

करती हैं, फिर भी उन के पति सुखी नहीं क्योंकि वे अनुभव नहीं करते कि उनकी पत्नी उनको पसन्द करती है।

इस सिक्के का दूसरा पक्ष अपने पति को यह दिखलाना है कि तुम्हारे लिए यह महत्त्व की बात है कि वह तुम्हें पसन्द करता है। पुरुष में जितना अहंभाव इस बात को जान कर होता है कि जिस स्त्री पर मैं प्रेम करता हूँ वह मेरा अनुमोदन चाहती है उतना दूसरी किसी बात से नहीं। वह, सही या गलत तौर पर, अनुभव करता है कि तुम्हारे बारे में उसके अभिमत को तुम सब से अधिक महत्त्व देती हो।

रेवा, एक दूसरी बात जिस का तुम्हें सदा ध्यान रखना चाहिए यह है कि तुम उस के काम के सम्बन्ध में कैसे बातें करती हो। हो सकता है कि तुम दोनों अनुभव करो कि उसका जन्म अधिक अच्छे कामों के लिए हुआ था और तुम दोनों को आशा हो कि वह अपने व्यवसाय में उन्नति कर जायगा। परन्तु यदि तुम्हारी किसी भी चेष्टा से उसे यह सुझाव मिला कि जो व्यवसाय वह कर रहा है उस के कारण तुम लज्जित हो, तो समझ लो तुम अपने लिए कष्ट मोल ले रही हो। सब से बड़ी बात यह है कि उसे कभी न जतलाओ कि देखो, दूसरे पुरुष कितनी उन्नति कर रहे हैं।

जब तुम्हारा पति घर आ कर अपने व्यवसाय की बातें करे तो उन को ध्यान देकर सुनने का अभ्यास करो। जब तुम अगले काम के सम्बन्ध में बातें करने लगोगी तो तुम भी यही आशा करोगी कि तुम्हारा पति भी उसी प्रकार दत्तचित्त हो कर उन्हें सुने। परन्तु वह उस में तुम्हारी दिलचस्पी का अनुमान उस दिलचस्पी से लगायगा जो तुम उस के कामों में लेती हो। यदि तुम को उस के काम नीरस लगते हैं तो हो

सकता है कि वह मान बैठे कि तुम को वह भी नीरस लगता है। उसे किसी ऐसे व्यक्ति का प्रयोजन है जिस के साथ वह खुल कर अपनी समस्याओं पर विचार कर सके। क्योंकि पुरुष को उसके काम से अलग करना सम्भव नहीं, इस लिए दोनों के साथ अनुकूलता-पूर्वक रहना सीखो।

इस बात के कई संयोग हो सकते हैं कि विवाह के पूर्व तुम किसी अच्छी नौकरी पर लगी हो और विवाह कर लेने पर तुम्हें उस नौकरी को छोड़ देना पड़े। यदि तुम प्रसन्नता-पूर्वक नौकरी का परित्याग नहीं कर सकती तो अच्छा यह है कि विवाह न करो। बहुधा विवाहिता स्त्रियों के सम्मेलनों में तुम कुछ स्त्रियों को रो कर कहती सुन सकती हो कि हाय हम ने पत्नी बनने के लिए कितनी अच्छी नौकरी या काम छोड़ दिया ! यदि तुम भी वैसा ही अनुभव करने और अपने पति को अपने आप को इस लिए अपराधी अनुभव कराने जा रही हो कि उस ने संसार को एक बड़ी प्रतिभा से वंचित कर दिया, तो कभी विवाह न करो।

वह एक समय डींग मारेगा तो दूसरे ही क्षण शिकायत करेगा; एक समय तुम्हें दोष देगा तो चट ही बाद तुम्हारी प्रशंसा भी करने लगेगा। वह अपने साहस का प्रभाव तुम पर डालने और तुम्हारे ध्यान को आकर्षित करने का यत्न करेगा। कभी तो तुम हैरान होगी कि क्या मैं उसे कभी सुखी कर भी सकती हूँ या नहीं, और कभी तुम्हें पता नहीं लगेगा कि उसे प्रसन्न करने के लिए कोई उद्योग करना चाहिए भी या नहीं। सोमवार को तुम्हें निश्चय होगा कि वह तुम्हें अपनी खेल बना कर रखना चाहता है। मंगलवार को तुम

समझोगी कि वह तुझ से माता का काम लेना चाहता है या बुद्धवार को तुम्हें लगेगा कि वह तुम पर प्रेम करता है, गुरुवार को, कि वह तुम से घृणा करता है, शुक्रवार को, कि उसे पता ही नहीं कि तुम संसार में हो, शनिवार को, कि यदि वह तुम्हें एक क्षण के लिए अकेला नहीं छोड़ता तो तुम चिल्लाने लगोगी। जो कुछ भी तुम उसके विषय में समझोगी वह एक या दूसरे समय में सच ही होगा।

अब रही काम-वासना या स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध की बात। सो मेरी परिभाषा में पति एक ऐसा जन है जो किसी पार्टी में स्त्रियों को (सिवाय अपनी पत्नी के) सिर और छाती नंगी किए देखने के विरुद्ध नहीं। वह अपने विचारों को तो निर्दोष समझता है, परन्तु अपनी पत्नी को सिद्धान्तहीन गुण्डों से, जो उसके अपने ही मित्र हैं, बचाना चाहता है।

बहुत सी स्त्रियाँ अनुभव करती हैं कि उन्हें अपने प्रति पुरुषों की निरन्तर मनोहरता प्रमाणित करनी पड़ती है, अन्यथा उनके पति उन पर ध्यान देना छोड़ देते हैं।

रेवा, मेरा उपदेश मानना। इस बात का निश्चय कर लो कि तुम्हारा पति तुम को मनोहर मानता है। ऐसे समय आ सकते हैं जब कि तुम्हारा आपस का वैवाहिक सम्बन्ध तुम्हें अनुत्तेजक जान पड़े और तुम्हें आश्चर्य हो कि अब उसे तुम में कोई दिलचस्पी नहीं रही, और तुम पुराने प्रेम की बातों को याद करके दुःखी रहने लगो। पुरुष अनुभव करना चाहता है कि उसकी पत्नी का सारा प्रेम केवल उसी के लिए है और कि वह उसके सिवा किसी दूसरे पुरुष से प्रेम नहीं करती। इसी प्रकार पत्नी भी अनुभव करना चाहती है कि मेरा पति मेरे सिवा किसी दूसरी स्त्री पर प्रेम नहीं करता।

यदि दोनों ओर यह बात नहीं होगी तो उनकी गृहस्थी टूट जायगी।

अधिक सम्भव है कि तुम्हें पता लगे कि स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के स्वरूप तथा प्रयोजन के बारे में तुम्हारे पति के विचार बड़े विचित्र हैं। पति अपनी पत्नी के साथ सम्बन्ध क्यों स्थापित करता है, इसके अनेक कारण हैं, और वे सब उसके लिए महत्त्वपूर्ण हैं। हो सकता है कि उसे इसलिए प्रेम करने की आवश्यकता का अनुभव होता हो क्योंकि वह अद्भुत और रसिक प्राणी है, सुखी है, उदास है, भयभीत, क्रुद्ध, प्रसन्नचित्त, हताश या अशान्त हैं। इन कारणों से तुम अनुभव करो कि वह अपने उपचार के रूप में तुम्हारा उपयोग करना चाहता है, और तुम इसे बुरा मानो। परन्तु वह तुम्हें अपने लिए क्या समझता है, इसके बारे में अपना अभिमत भूल जाने का यत्न करो और उसे अपना अभिमत प्रकट करने दो।

कई पत्नियाँ, स्त्री-पुरुष-संबन्ध की शक्ति मालूम कर लेने पर, इसका उपयोग सौदाबाज़ी के लिए—कोई नया गहना बनवा देने, कोई नया वस्त्र सिला देने, या कोई दूसरी बात मनवाने के लिए—करती हैं। जब स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध को गिरा कर इस प्रकार एक लाभदायक वस्तु बना दिया जाता है तो इसका कुछ मूल्य नहीं रह जाता। जो मूल्य तुम अपना लगाए बैठी हो वह गिर जाएगा। कदाचित् तुम अपने पति से भी हाथ धो बैठोगी। वह किसी दूसरी ऐसी स्त्री का शिकार हो जायगा जो गहना-कपड़ा पाने के लालच से नहीं, वरन् उसके अपने-आपके लिए ही उसे पसन्द करती है।

पुरुष अपनी पत्नी को ऐसा व्यक्ति समझता है जो उसका घर चलायगी, परिवार की आवश्यकताओं का ध्यान रखेगी, उस पर प्रेम करेगी, और उसकी साँझी तथा संगिनी होगी। निस्सन्देह विशेष अवस्थाओं में पुरुष और उसकी पत्नी दोनों काम कर सकते और सुखी रह सकते हैं। यदि तुम्हारे विवाह की भी यही अवस्था है तो इससे अच्छी बात और दूसरी नहीं। परन्तु, बेटी, स्मरण रखो कि तुम्हारा पति विवाह करके अपने साथ एक ही कमरे में रहने वाली स्त्री साथी की ही नहीं, वरन् इससे कुछ अधिक की आशा करता है। और वह यह जानना चाहेगा कि वह कौन ऐसा व्यवसाय हैं जिस के लिए इतनी असाधारण योग्यता, बुद्धि और चतुराई की आवश्यकता है या जो अच्छी गृहस्थी बनाने की अपेक्षा समाज के लिए अधिक मूल्यवान है।

अनेक ऐसी बातें हैं जो स्त्रियों के लिए तो तुच्छ होती हैं, परन्तु पुरुषों के लिए बड़े महत्त्व की हैं।

उदाहरणार्थ, रेवा, तुम्हें यह बात सीखनी पड़ेगी कि जिस समय तुम्हारा पति निस्तब्ध तथा अभिभूत है, अधिक संभव यही है कि वह तुम्हारे साथ कुपित नहीं—जब तक कि तुम स्वयं उससे न पूछो कि तुम रुष्ट क्यों हो। तुम्हें उसकी दृष्टि, उसकी घुरघुराहट, उसकी हँसी-दिल्लगी, उसके अचानक ध्यान देने और न देने का विशेष अर्थ सीखना पड़ेगा।

तुम्हें उन खेलों में दिलचस्पी दिखानी पड़ेगी जो वह कभी नहीं खेला और इस लिए उन पर प्रेम करता है। जो भी खेल

उसे अच्छी लगती है उसमें उसकी सक्रिय दिलचस्पी को प्रोत्साहित करो, जैसे कि शिकार खेलना, वन-विहार, क्रिकेट या फुटबॉल का मैच देखना। तुम्हारे ऐसा करने से वह अपने को और भी अधिक पुरुष अनुभव करने लगेगा। इससे तुम भी अपने को और भी अधिक स्त्री अनुभव करने लगोगी।

अपने पति के सद्‌गुण, दुर्गुण, शक्ति, दुर्बलता, शेखी और संदेह के समवाय के साथ मिलकर रहना तुम्हारे लिए आसान न होगा। परन्तु स्मरण रखने योग्य सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस कारण से वह तुम्हें अपने घर में चाहता है वह यह है कि जो गार्हस्थ्य जीवन तुम उपलब्ध करती हो वह जीवन-संघर्ष को सार्थक बना देता है। इस धमकी देने वाले वीर, इस गँवार अभिमानी, इस अत्यधिक आशुक्षुब्ध अत्याचारी के साथ भी तुम सुखी रह सकती हो—यदि तुम उसे समझने का निष्कपट भाव से प्रयास करोगी।

---

१५. प्राणखाऊ मनुष्य

प्राणखाऊ मनुष्य को कोई पसंद नहीं करता। सब कोई उससे बचना चाहता है। इस लिए इस दुर्गुण से अपने को मुक्त रखना आवश्यक है।

जो मनुष्य समझता है कि मैं प्राणखाऊ हूँ, वह प्राणखाऊ क्वचित् ही होता है। जिस मनुष्य को कभी विचार तक नहीं आता कि मैं कहीं प्राणखाऊ तो नहीं, उसके प्राणखाऊ होनें का बहुत अधिक संयोग है। कारण यह कि प्राणखाऊ मनुष्य की बड़ी निशानी यह है कि उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि वह प्राणखाऊ है। वह बहुत अधिक आत्म-तुष्ट होता है। वह अपने-आप में इतना मस्त सा रहता है कि उसे पता नहीं लगता कि दूसरों पर उसका कैसा संस्कार पड़ता है।

प्राणखाऊ लोग अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें सब से बुरा उदाहरण वह व्यक्ति है जो अपनी बात अपनी दादी या पड़दादी से आरम्भ करता और अपने सभी संबंधियों की चर्चा करके किसी दूर के संबंधी की चर्चा के साथ बात को समाप्त करता है। इस बीच में उसके श्रोता शिष्टता और सौजन्य के कारण उसके इर्द-गिर्द पत्थर की असहाय मूर्ति बने बैठे होते हैं। एक प्राणखाऊ मनुष्य वह है जो मतलब की बात थोड़े में न कह कर, बात को पाताल से निकाल कर लाता है। उसे तब तक सन्तोष नहीं होता जब तक वह बाल की खाल उतारता हुआ छोटी से छोटी बात नहीं सुना देता। वे लोग भी अच्छे नहीं लगते जो जब कोई दूसरा मृदु से मृदु बात

भी कहता है तो उसे 'अब और रहने दे' कह कर उसे बीच में ही रोक देते हैं। फिर एक शिष्टता का दिखलावा करने वाला प्राणखाऊ भी होता है। वह बात-बात में बड़े आदमियों के नाम ठूँसता है। जिन लोगों के संबंध में वह बात करता है उनको वह बहुधा जाना करता है। परन्तु उसमें हीनता का भाव बद्धमूल होने से वह प्रत्येक वाक्य में किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का नाम घुसेड़ कर अपनी बात को प्रबल और महत्त्व-पूर्ण बनाने की चेष्टा करता है।

बहुत से प्राणखाऊ "मुझे याद है" से प्राण खाना आरम्भ करते हैं और "मुझे" पर बहुत अधिक बल देते हैं। इसलिए हमें अपने और अपने परिवार के संस्मरण बहुत अधिक सुनाने से बचना चाहिए।

एक अनुभवी मनुष्य का यह उपदेश सदा याद रखने योग्य है—"अपने आप, अपने परिवार, अपने संबंधियों या अपने मित्रों को बार-बार अपने वार्तालाप का विषय मत बनाओ। मत कहो, "ऐसा करना मेरी रीति या स्वभाव है; मुझे घट्टे बहुत दुःख दिया करते हैं; मेरे बच्चे ने कल रात अमुक विनोदपूर्ण बात कही'।"

सभी प्राणखाऊ मनुष्य बातूनी नहीं होते। एक बहुत चुप रहने वाला प्राणखाऊ होता है। उसके अपने परिवार में सब लोग उसके भय से उदास और घबराए हुए रहते हैं। उसके डर के मारे वे बोल नहीं सकते। प्रीति-भोजों में वह कभी मुँह नहीं खोलता। जब खोलता है तो केवल उसमें कुछ डालने के लिए ही। ऐसे चुप रहने वाले व्यक्ति से भी लोग तंग आ जाते हैं।

सभी प्राणखाऊ मनुष्य मंदबुद्धि नहीं होते। इनमें कई ऐसे चतुर भी देखने में आते हैं जो अपने श्रोताओं पर अधिकार

करके उनको मंत्रमुग्ध सा कर देते हैं। इसके विपरीत, नितान्त सरल मनुष्य भी दूसरों को अनुप्राणित कर सकते और थोड़ी सी सच्ची दिलचस्पी लेकर वार्तालाप को आगे से आगे चलाए रख सकते हैं। यह बात सत्य ही है कि अच्छे श्रोता अच्छे बातचीत करने वाले हो जाते हैं। अपनी सजीव रुचि, सौजन्य तथा संवेदनशीलता से वे पार्टी–निमंत्रित-जन–का वास्तविक जीवन होते हैं। इसके विपरीत, एक चतुर अहंवादी बहुधा इस समारोह का गला घोंट कर उसे मार डाल सकता है।

निश्चय ही केवल अच्छा श्रोता होना ही पर्याप्त नहीं। यदि हम सब श्रोता ही बन जायँ, तो हमें विश्व-व्यापी मौन में रहना पड़े। और बहुत अधिक धैर्य से प्राणखाऊ मनुष्य को प्रोत्साहित करना भी कोई दया नहीं। कभी-कभी कोमल परन्तु दृढ़ शब्दों से उसे रोक देने से वह बहुत अधिक बढ़ने नहीं पाता। एक पत्नी ने एक ऐसा संकेत बना रखा था जिससे वह अपने पति को चेतावनी दे देती थी कि आप यही बात पहले भी कई बार सुना चुके हैं, या अब और बातें करना ठीक नहीं, आप काफी बोल चुके हैं।

कुछ लोग ऐसे हैं जो भाषण के छल या मानसिक और शारीरिक रीतियाँ नकल कर लेते हैं। ये बात-बात में "समझे ?" "अर्थात्" या "आप जानते हैं" जैसे शब्द बार-बार कहते हैं। उनकी इस कुटेव से उनके मित्र तंग आ जाते हैं। इस लत्त से बचने की आवश्यकता है।

हम प्राणखाऊ मनुष्य की हँसी उड़ा सकते हैं। परन्तु प्राणखाऊपन कोई हँसी की बात नहीं। यह एक गम्भीर, संक्रामक आध्यात्मिक व्याधि है। वैवाहिक जीवन में दुःख का एक बड़ा कारण इसे प्रमाणित किया जा सकता है। जो

युवक और युवतियाँ अपने विवाह के प्रारम्भिक काल में एक दूसरे को प्रसन्न तथा आकर्षित रखने के लिए अपनी सर्वोत्तम वस्तु देते थे बाद को इतने ढीले पड़ गए कि उनकी गृहस्थी उन्हें इतनी नीरस लगने लगी कि वे एक दूसरे को छोड़ कर भाग जाने के लिए उत्सुक हो उठे।

क्या प्राणखाऊ मनुष्य का सुधार हो सकता है ? हाँ, यदि हम अपने इस रोग को उसके जीर्ण होने के पहले ही पहचान लें। हम इस रोग के लक्षणों को ध्यान से देखें, और यदि पता लगे कि रोग आरम्भ होने लगा है तो उसे रोकने का उपाय कर सकते हैं। इसका एक सब से उत्तम उपाय यह है कि हम न केवल अपने कामों में, वरन् अपने इर्द-गिर्द के सारे संसार के कामों में भी दिलचस्पी रखें और उनके प्रति जागरूक रहें। जो मनुष्य अपने को नहीं उकताता वही दूसरों को भी नहीं उकताता।

सारांश यह कि किसी में दिलचस्पी रखना स्वय दिलचस्प होना है, आप सचेत होना दूसरों को सचेत रखना और अपने प्रति कृतज्ञ अनुभव कराना है। हमारी प्रभु से यही प्रार्थना हो कि ज़ब तक हम जीते हैं हम सचेत रहें। प्रत्येक दिन इस प्रकार जियो, मानो यह आपका अन्तिम दिन है और इस बात को भूल जाओ कि विगत कल कितना अद्भुत था। अपने सामर्थ्य से पूरा-पूरा काम लीजिए।

जो मनुष्य अपने कारखाने में बैठ कर वस्तुएँ बनाता है उसके उकता जाने की उस मनुष्य की अपेक्षा कम सम्भावना है जो सायंकाल समाचार-पत्र पढ़ता हुआ जम्हाइयाँ लेता है। जो मनुष्य अपने बच्चों को वाटिका में, वरन् गली में भी खेल खेलना सिखाता है वह उस मनुष्य की अपेक्षा जो

बैठा-बैठा दूसरों को खेलते देखा करता है, अधिक सुखी और अधिक स्वस्थ होता है। जो मनुष्य अपने बच्चों को देहात में घुमाने ले जाता और उनको तथा अपने को देहात के संबन्ध में कुछ सिखाता है उसके उस मनुष्य की अपेक्षा जो जनाकीर्ण सड़क पर अपने परिवार के लिए उतावली में भागता है, तंग होने और उकता जाने की कम सम्भावना है।

बहुधा बेकारी और आराम-तलबी से मनुष्य बहुत तंग आ जाता है। पिछले लोग शारीरिक श्रम अधिक करते थे। इसलिए वे सदा चुस्त और फुर्तीले रहते थे। परन्तु सुखप्रिय निठल्ले मनुष्य को काम एक भार जान पड़ता है। वह चाहता है कि इसे यथासम्भव शीघ्र-शीघ्र ही फेंक कर मुक्त हो जाए।

हम जो कुछ कहते हैं, हम जो कुछ हैं, हम अपने को जो कुछ बना लेते हैं, वह न केवल हमारे अपने जीवन के वरन् उन सब के गुण का जो हमारे इर्द-गिर्द हैं, निर्णय करता है। यदि मनुष्य अपनी प्रवृत्ति तथा योग्यता को, उन अनेक नवीन सुयोगों का, जो प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच के भीतर हैं, उपयोग करने और आनन्द लेने के लिए विकसित करता है, तो उसका परिवार तथा उसकी परिस्थितियाँ उससे वह गुण ग्रहण कर लेती हैं। वह चाहे अपने को मशीन में केवल एक दाँतेदार पहिया ही समझे, परन्तु वह इसके साथ ही एक शिल्पी तथा सब से बड़ी कला—जीने की कला—का स्रष्टा तथा निपुण शिल्पी भी है।

ऐसी दशा में न तो वह आप तंग होगा और न कोई दूसरा उससे तंग आएगा।

---

१६. क्या बच्चों को माता पिता का सम्मान करना चाहिए ?

हम प्रायः लोगों को कहते सुनते हैं, "आज कल के बच्चों में माता-पिता के लिये कोई सम्मान का भाव नहीं।" मानो यह कोई बहुत ही शोचनीय अवस्था हो। जो लोग यह बात कहते हैं, सामान्यतः उनका भाव यह रहता है कि आज कल के बच्चे अपने माता-पिता का डर नहीं रखते। निश्चय ही यह कोई बुरी बात नहीं, वरन् बहुत अच्छी बात है।

नवयुवकों के जीवनों से पाप और भय के भाव को जितना अधिक हम दूर रखेंगे, उनके व्यक्तित्व के लिए परिपक्व बनना उतना ही सहज होगा। पारिवारिक जीवन लोकतंत्री होना चाहिए, न कि निरंकुश। जब घर में एक के स्थान में दो स्वेच्छाचारी शासक—माता और पिता—हों, तो अवस्था और भी खराब हो जाती है।

सच्चा शिष्टाचार हृदय से उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक स्वार्थी व्यक्ति का आचरण कभी अच्छा नहीं होता। यदि आप सदा दूसरों का ध्यान रखते हैं तो आप का आचरण सदा अच्छा होगा।

माता-पिता होने से ही शासन करने का ईश्वरीय अधिकार नहीं मिल जाता। बच्चों से भी, उनकी शारीरिक धारणा शक्ति और ज्ञान के अनुसार उनको विवेकवान प्राणी मान कर, पुनर्विचार के लिए प्रार्थना की जा सकती है।

सच्चा 'सम्मान' वह भाव है जो हमारे प्रशंसा तथा अनुकरण के योग्य होने के कारण दूसरों के मन में उत्पन्न होता है। परन्तु अनेक माता-पिता विशेष रूप से इससे असंगत और विरुद्ध होते हैं। वे बच्चे के साथ स्कूल की फीस या कपड़ों के खर्च के बारे में तो विचार करेंगे, परन्तु उन बातों पर, जो बच्चे के संसार में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण देख पड़ती हैं, उसके साथ विचार करने से इनकार कर देते हैं।

"मैं तेरी शिक्षा पर रुपया खर्च कर रहा हूँ। तुम्हें अपनी पढ़ाई पर ध्यान देना चाहिए।" या "तू ऐसा असावधान क्यों है जो अपना पायजामा फाड़ डाला है? जानते हो, पायजामे पर कितने पैसे लगते हैं?" उसकी कच्ची आयु में ऐसी बातें कहना, मानो उसे एक प्रौढ़ व्यक्ति मान कर उसे एक ऐसे उत्तरदायित्व की शिक्षा देना है जिसे लेने में वह असमर्थ है।

जिन निषेधों का बच्चे की प्रसन्नता पर प्रभाव पड़ता है उन पर बच्चे के साथ विचार करना और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। "मैं प्रद्युम्न के साथ क्यों न खेलूँ?" या "मैं कबड्डी खेल कर ही क्यों न घर आऊँ?"—ऐसी बातों पर बच्चों के साथ गम्भीरता-पूर्वक तर्क-वितर्क होना चाहिए।

"क्योंकि मैं ऐसा कहता हूँ" या "क्योंकि मुझे सर्वाधिक ज्ञान है," बच्चे के लिए कभी भी पर्याप्त कारण नहीं समझा जाना चाहिए।

जब चार वर्ष का बच्चा क्रोध के आवेश में अपनी माँ को लात मारता, काटता या पीटता है तो उसकी यह चेष्टा उससे अधिक अपराध नहीं होती जितना कि बच्चे के

कालीन पर मुरब्बा गिरा देने पर माता का उसे थप्पड़ मारना। माँ और बच्चा दोनों में यह अनिष्ट-भावना एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है।

यदि बालक को अनुभव कराया जायगा कि उसका कर्म ऐसा है जिसके कारण वह अपने माता-पिता के स्नेह तथा रक्षण से वंचित किया जा सकता है, तो उसकी आक्रमण-शीलता उसके अपने विरुद्ध हो जायगी। वह उसे नियंत्रित करना कभी न सीखेगा। वह इस भाव को लेकर बड़ा होता जायगा कि मैं अपने पर भरोसा नहीं कर सकता, क्योंकि ठीक की अपेक्षा मुझे गलत काम करने की अधिक प्रवृत्ति है।

आगे चलकर, जब उससे कहा जायगा कि "सामने मत बोलो" तो वह आश्चर्ययुक्त तथा हताश रह जायगा। अनेक तरुण जो समाज़ में अपनी जीभ और मुँह को सिला पाते हैं, उसका कारण बचपन में उनके माता-पिता की इस धमकी का प्रभाव होता है—"चुप रह, तू अभी कल का बच्चा है।"

यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे हमारा सम्मान करें, और हमें अवश्य चाहना चाहिए, तो हमें उन का सम्मान प्राप्त करने के योग्य बनने का यत्न आरम्भ कर देना चाहिए। यह बात अकपटता और स्थिरता से हो सकती है।

शेखी मत बघारो। जो कुछ आप हैं उस से कुछ भी अधिक अच्छा होने का दिखलावा न करो। अपने को सर्वोच्च न्याया-धीश न समझ बैठो। सदा बच्चे के दृष्टि-कोण को समझने के लिए तैयार रहो, और उसे अनुभव द्वारा यह सीखने में

सहायता दो कि जिस प्रकार का आचरण होता है सदा उसी प्रकार का उसका परिणाम या प्रतिक्रिया होती है।

यदि माता-पिता अपने में व्यवहार का एक समान्तर, उच्च मानदण्ड बनाए रखने का यत्न करते हैं, यदि वे पारिवारिक बातावरण को खिचाव से रहित रखते हैं, और यदि, किसी किसी अवसर पर, वे अपने बच्चों के सामने अपनी भूल स्वीकार करने को तैयार हैं, तो उन्हें कभी कभी हो जाने वाले स्खलन से चिन्तातुर न हो जाना चाहिए, क्योंकि ऐसी भूल-चूक होना आवश्यक है। उन्हें इस बात से नहीं डरना चाहिए कि उतावली में कहा हुआ कोई शब्द, या जल्दी में किया हुआ कोई काम बच्चे के विश्वास को उन से छीन लेता और मन की शक्ति को नष्ट कर डालता है।

'मेरी भूल थी'—ये शब्द किसी बच्चे से भी कहने के लिए हमें उतना ही तैयार रहना चाहिए जितना कि हम किसी ऐसे वयस्क से, जिस को हमने अप्रसन्न किया है, कहने को तैयार रहते हैं।

इस रीति से बच्चा अपने माता-पिता को वास्तविक व्यक्ति समझने के योग्य होता है। तभी वह उन को ऐसे व्यक्ति समझने लगता है जिनकी उनके अपने सच्चे गुणों के कारण प्रशंसा होती है और उन पर प्रेम किया जाता है। तभी वह उन को ऐसे लोग नहीं समझेगा, जिनके सब भलाई का उद्गम होने के कारण उनकी पूजा होती है या जिन से लोग इस लिए भयभीत रहते हैं कि वे भयानक वज्रपात कर सकते हैं।

---

१७. प्रशंसा करने में सदा लाभ रहता है

आप को क्या अली बाबा की कहानी याद है! उसने चट्टान के सामने खड़े हो कर ज्यों ही 'खुलजा, सिमसिम', कहा, तत्काल द्वार खुल गया। भीतर एक बड़ा कमरा देख पड़ा, जिस में बहुमूल्य कालीन, रेशमी कपड़े, कमखाब और सोने-चांदी के ढेर थे। कभी कभी हमारे सगे-संबंधी, मित्र, पड़ोसी या सहकारी चट्टान के समान ही निस्तब्ध तथा अप्रवेश्य होते हैं। क्या आपने देखा है कि यदि आप उनकी प्रशंसा के कुछ शब्द कह दें, तो वे साधारणतः मुस्करा देते और "खुल जाते" हैं?

मान लीजिए, आप छुट्टी पर जा रहे हैं, और आप अपने पड़ोसी, श्री रामपाल से कहना चाहते हैं कि मेरे पीछे मेरे तोते का ध्यान रखना। कदाचित् श्री रामपाल उस दिन सवेरे कुछ रूखा-सा है और बोलना पसन्द नहीं करता। वार्तालाप के आरम्भ में ही उसकी उगाई हुई गोभी या बाग के मीठे आम या उसके व्याख्यान की प्रशंसा कर दीजिए। फिर आप देखेंगे कि वह आप के तोते का ध्यान रखने के लिए झट सहमत हो जायगा।

हो सकता है कि आप की नई पड़ोसिन, श्रीमती सरला, लज्जालु, संलाप-पराङ्मुख या हताश हो। आपने उसके साथ मित्रता करने का यत्न किया है। परन्तु एक से अधिक अवसरों पर उसने आप को पीछे हटा दिया हो। अगली बार जब आप उसे बाजार में, खेत में, या दूकान में मिलें तो केवल 'नमस्ते' कह

कर ही सन्तुष्ट न हो जाइए। उस की साड़ी की, या उस के घुँघराले बालों की, या उस के बच्चे की प्रशंसा कीजिए। कुछ ही दिन में वह आप को चाय का निमन्त्रण दे देगी।

वस्तुत: प्रशंसा में कुछ चमत्कार है।

मित्र बनाना

इस से न केवल हमें कठिनाइयों को दबाने और जीवन में अधिक सुख पाने में ही सहायता मिलती है, वरन् इस के साथ ही हमारे प्रशंसा के शब्द हमारे दूसरे साथियों के बोझ को भी हलका और उनके जीवनों को अलंकृत कर देते हैं। रसिकता के सदृश, प्रशंसा उन रोकों को तोड़ डालती है जो मनुष्य प्राणियों को एक दूसरे से अलग रखती हैं और यह 'मिलनसारी का भाव' 'उत्पन्न करती है। इस के अतिरिक्त यदि हम, जब यह न्याय-संगत हो, सदा प्रशंसा करने का यत्न करते हैं, तो हमारी प्रवृत्ति अपने आप को भूल कर दूसरों की चिन्ता करने की हो जाती है, हम अधिक मित्र बना लेते हैं, और हमारी मित्रताएँ अधिक सुखद, अधिक घनिष्ठ और अधिक स्थायी हो जाती हैं। क्या आपने मालूम किया है कि प्रशंसा 'दु:साध्य' तथा सड़ियल' पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के साथ व्यवहार में विशेष रूप से लाभदायक हो सकती है ?

सम्भवत: आप को ज्ञान होगा कि जो लोग स्नायुओं की गड़बड़ के कारण मानसिक रोगों में ग्रस्त होते हैं उनमें से अधिकांश दु:साध्य होते हैं। वे बहुधा ऐसा संस्कार डालते हैं कि वे निरुत्साहित हैं। ऐसी दशा में मनोविज्ञान द्वारा मानसिक रोगों का उपचार करने वाले चिकित्सक का काम रोगी में कोई ऐसा गुण, कोई ऐसा विशेष लक्षण, कोई ऐसी कार्य-

क्षमता मालूम करना होता है जो प्रशंसा के योग्य हो। अब, यह अभिनन्दन न केवल रोगी को अनुप्राणित करता है, वरन् यह चिकित्सक के रोगी को चंगा करने के काम को भी आसान बना देता है, क्योंकि प्रशंसा श्रद्धा, विश्वास और सहयोग की कामना को प्रोत्साहित करती है।

यदि आप जनक-जननी हैं और आप को एक दुर्बल तथा चिड़चिड़े बच्चे का सामना करना पड़ता है, तो आप को श्रीमती रुक्मिणी और उस के नन्हे लड़के, जयन्त, का प्रसंग दिलचस्प लगेगा।

जयन्त का झगड़ालू मिज़ाज सारे परिवार की शान्ति को नष्ट कर डालता था। श्रीमती रुक्मिणी चिल्ला कर कहती, 'मैं तुम्हारी यह तुनुक मिजाजी सहन नहीं कर सकती। यदि तुम अपनी इस बुरी लत्त को नहीं छोड़ोगे तो मैं तुम्हारे थप्पड़ लगाऊँगी।'

आगे चल कर उस ने देखा कि प्रशंसा जयन्त को ठीक करने में बहुत सहायक हो सकती है। अब जब कभी जयन्त पर चिड़चिड़ेपन तथा जिद का दौरा होता तो उस की माँ शान्त रहती और जयन्त का ध्यान उस के किसी ऐसे सद्गुण, योग्यता या लक्षण की ओर दिलाती जो प्रशंसा के योग्य होता। इस पर वह तत्काल मुस्करा उठता। तब श्रीमती रुक्मिणी उसे घर के छोटे छोटे कामों में माता और पिता को सहायता देने के लिये प्रोत्साहित करने लगी। शीघ्र ही उसके बर्ताव में एक सुनिश्चित सुधार देख पड़ा।

इसी प्रकार, यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि यदि अध्यापक लड़कों की भूलों पर कम से कम ध्यान दें और

उनके ठीक उत्तरों के लिए उनकी प्रशंसा करने का कोई अवसर हाथ से न जाने दें, तो वे अपने अध्ययन में अधिक प्रगति दिखाते हैं।

इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि माता-पिता और अध्यापक दोनों जो प्रशंसा का दान करते हैं और बच्चे जिनकी प्रशंसा की जाती है, लाभान्वित होते हैं। कारण यह कि जब नन्हें बच्चे अच्छा व्यवहार और अपनी पढ़ाई में अच्छी प्रगति करते हैं, तो स्पष्टतः माता-पिता और शिक्षक की कठिनाइयाँ घट जाती हैं। हो सकता है कि कुछ वयस्क लोग डरें कि बार-बार प्रशंसा करने से छोकरों में अहंकार उत्पन्न हो जायगा। परन्तु सचाई यह है कि इससे जल्दी घबरा जाने वाले बालक की अत्म-निर्भरता की कमी और अपने को दोष देने की प्रवृति ही प्रतितुलित और दूर होती है।

आत्म-श्लाघा

कई वयस्क अपने-आपको हतोत्साहित तथा दण्डित करते और दोष देते हैं। यदि आपका "अति अहं" क्रूर तथा कर्कश है, यदि आपके मान-दण्ड, आदर्श और लक्ष्य बहुत अधिक ऊँचे हैं, तो श्री रमाशंकर के जीवन की निम्नलिखित घटना से आप लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि यह आत्म-प्रशंसा के मूल्य का प्रदर्शन करती है।

एक दिन रमाशंकर का अपनी पत्नी के साथ झगड़ा हो गया। काम पर जाने के लिए जब वह बस स्टेण्ड पर पहुँचा, उसके मन में पश्चाताप, पाप और आत्म-विरक्ति का ववंडर मच रहा था। जब वह अपने कार्यालय में पहुँचा तो वह

क्लान्त, चिड़चिड़ा और हतबुद्धि बना हुआ था। उसकी मानसिक दशा ने न केवल उसकी अपनी कार्य-क्षमता को निर्बल कर दिया, वरन् उसके मालिकों पर भी इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

सौभाग्य से रमाशंकर ने अपनी दुःख की चर्चा अपने डाक्टर से की। डाक्टर प्रशंसा और प्रोत्साहन का मूल्य समझता था। उसने रमाशंकर को स्मरण कराया कि सर्वतोभावेन आप एक श्रेष्ठ पति, एक आदर्श मालिक और समाज के एक उपयोगी सदस्य हैं। अन्ततः डाक्टर ने इस बात को बड़े जोर से कहा कि पतियों और पत्नियों के बीच कभी-कभी झगड़ा हो जाना अपरिहार्य—और हितकर भी है।

बाद को श्री रमाशंकर ने अनुभव कर लिया कि उसके नमूने के पुरुष और स्त्रियाँ खुल कर आत्म-प्रशंसा कर सकती हैं और ऐसा करने से उनको आत्मोल्लास का शिकार होने का कोई डर नहीं। अपने-आपको दण्ड देने के स्थान में वह अपनी अच्छी बातों की गणना करने लगा। अब जब वह अपनी पत्नी के साथ झगड़ा करने के बाद घर से बाहर जाता, तो अपने को दोष देने से इंकार कर देता। इसके स्थान में वह अपने को स्मरण कराता कि—सब मिलाकर—मेरा विवाह सफल है।

इससे लाभ होता है

इस आत्म-प्रशंसा ने न केवल रमाशंकर को सहायता दी—इसने उसकी पत्नी, मित्रों, पड़ोसियों और मालिकों को भी लाभान्वित किया, क्योंकि उसके नये प्राप्त किए आत्म-

ज्ञान और अन्तर्दृष्टि ने उसे दूसरे लोगों के साथ अधिक सन्तोषजनक सम्बन्ध उत्पन्न करने में समर्थ कर दिया।

यदि आप दूकान के मालिक हैं तो आपको इस आदर्श-सूचक वाक्य पर ध्यान देना चाहिए—प्रशंसा करने में सदा लाभ होता है।

उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि आपको किसी कठिन प्राविधिक स्मरणीय विषय का विवरण बोल कर लिखाना है, परन्तु उस दिन आपका अधिक दक्ष टाइपिस्ट छुट्टी पर है। हो सकता है कि आपका छोटा टाइपिस्ट बहुत अनुभवी न हो, परन्तु कदाचित् हाल ही में उसने अपने काम में कुछ उन्नति के लक्षण प्रकट किए हों। यदि आप उसे आगे लिखी जैसी कोई बात कहेंगे तो वह संभवतः विशेष चेष्टा करेगा :—

"आज प्यारेलाल छुट्टी पर है, इसलिए मैं आप से मुझे सहायता देने के लिए कहने लगा हूँ। नियमित रूप से तो मुझे प्यारेलाल के अपनी छुट्टी से वापस आने तक प्रतीक्षा करनी होगी, परन्तु श्री राममनोहर, मैं जानता हूँ, आप बड़ा उद्योग करते रहे हैं। मुझे निश्चय है कि आप विशेष उद्यम करेंगे।"

कम बीमारी

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि सभी मालिक, व्यवस्थापक, परिदर्शक, तत्वावधायक आदि प्रशंसा के मूल्य को समझें, तो उनके कार्यालयों में बीमारी की छुट्टियाँ कम हो जाएँगी और निर्धारित समय में उत्पन्न द्रव्य का परिमाण बढ़ जायगा।

अपने बन्धु-बान्धवों, मित्रों, पड़ोसियों, सहकारियों या नौकरों में अच्छी बातें ढूँढ़ते समय एक नियम सदा याद रखना चाहिए—प्रशंसा तभी करनी चाहिए जब सचमुच कोई उसके योग्य हो। झूठी प्रशंसा एक प्रकार की असाधुता है। इससे भलाई होने की बहुत कम आशा है।

परन्तु क्योंकि हम सब की यह कामना रहती है कि दूसरे लोग हम पर ध्यान दें, या हमें अच्छा समझें और हम अनुभव करें कि किसी मनुष्य की दृष्टि में हमारा भी कुछ महत्त्व है इसलिए सच्ची प्रशंसा करने में सदा लाभ रहता है।

---

१८. अच्छा मिलनसार बनने के गुर

हम सब को कभी न कभी अवश्य कोई ऐसा मनुष्य मिला है जिसके लिए हम स्वेच्छापूर्वक कोई काम करने को तैयार होते हैं। यह बात क्यों है ? इसका अपना एक "ढंग" है। हम उसके लिए कुछ किए बिना रह नहीं सकते। हमें उस का काम करने में आनन्द आता है।

लोगों के साथ निभाने का कौशल एक कला है। परन्तु इस के कुछ नियम हैं। लोगों में 'घुल-मिल जाने' के इस व्यवसाय के कुछ मौलिक सिद्धान्त आगे दिए जाते हैं।

१—छिद्रान्वेषण मत करो। इस की तात्कालिक प्रतिक्रिया यह होती है कि दूसरे व्यक्ति के मन में रोष उत्पन्न हो जाता है। हम में से कोई भी अपने को मान-मर्दित या नीचा अनुभव करना पसंद नहीं करता। कटु आलोचना बहुधा चुभती रहती है।

२—कभी 'व्यंगपूर्ण' या कटु टीका-टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। कभी 'व्यंगपूर्ण' या क्रोधपूर्ण चिट्ठियाँ न लिखो। २४ घंटे तक ठहरे रहो, ताकि इस काल में कटुता और व्यंग्य शान्त हो जायें। तब चिट्ठी को फाड़ डालो।

३—जब किसी की आलोचना करना बहुत आवश्यक हो, तो पहले उस मनुष्य या उसके काम में कोई खूब प्रशंसा-योग्य बात ढूंढ़नी चाहिए। इस काम को पहले करो। तब अप्रत्यक्ष रूप से आलोचना करो और दूसरे

मनुष्य को हलके से नीचे गिराओ। आप देखेंगे कि किसी भी संतुलित आलोचना को दूसरा व्यक्ति संभवतः उचित भाव से ग्रहण करेगा और रुष्ट नहीं होगा। कुछ भी हो, सहयोग की अपेक्षा है, न कि निरङ्कुश नियंत्रण की।

४—मनुष्य-मात्र की सब से बड़ी लालसा आदर पाने की होती है—यह अनुभव करने की होती है कि हमें जितना चाहिए उतना महत्त्व मिल रहा है। दूसरे मनुष्य के कपड़े पहनने की रीति, उसके बोलने के ढंग या उसके काम से धोखा मत खाओ। उसे एक मनुष्य समझ कर उसके साथ व्यवहार करो।

हो सकता है कि कदाचित् वह सड़क पर झाड़ू देने का काम करता हो, परन्तु इसके साथ ही वह कबूतर उड़ाने, मुर्गी पालने, या बाग लगाने में भी निपुण हो। प्रत्येक मनुष्य का कोई न कोई शौक या प्रिय विषय होता है, जिसमें उसकी प्रचण्ड रुचि रहती है। हो सकता है अपने विषय का प्रयोजनीय ज्ञान हो और वह अपने अनुभव बताने के लिए बहुत इच्छुक हो।

वृद्ध सैनिक अपने कारनामे और शिकारी अपनी जोखिम की कहानियाँ सुनाने के लिए क्यों उत्सुक रहते हैं? क्या इस का कारण अपने गुणों का आदर पाने की उनकी लालसा नहीं होता ?

५—मालूम कीजिए कि लोगों की दिलचस्पी किस बात में है, और फिर उस विषय में उनसे बातें कराइए।

६—अच्छा श्रोता होना इस बात का लक्षण है कि आप को

लोगों में—उनके सुख में और दुःख में—सच्ची दिलचस्पी है। इस से हम दूसरे व्यक्ति के दृष्टि-कोण को देख सकते हैं। प्रत्येक प्रश्न के सदा दो पक्ष होते हैं। इस से संसार में एक बहुत बड़े सद्गुण—सहिष्णुता—की शिक्षा मिलती है।

७—लोगों की सेवा के छोटे छोटे काम करने से मत डरो। छोटी छोटी बातों का भी महत्त्व होता हैं। मित्रों के यहाँ कोई विवाह-शादी या मरण-शोक हो तो उनको वधाई या समवेदना का पत्र अवश्य लिखो। उनकी पत्नी, परिवार, बच्चे और कारोबार का हाल पूछिए। अपने मित्रों की रुचियों और शौकों को नोट कर रखिए। वार्तालाप में उन विषयों को लाइए। यदि किसी ऐसे विषय पर कोई नई पुस्तक छपी हो जिसमें आप के मित्र को विशेष रुचि है तो उससे पूछिए कि क्या आप ने वह पुस्तक देखी है? बहुत संभव तो यही है कि उसने वह पुस्तक देखी होगी। यदि नहीं तो उसकी याद दिलाने के लिए वह आप को अच्छा समझने लगेगा। अपने परिचितों, प्रेमियों और उनके बाल-बच्चों के नाम याद रखो और उनका प्रयोग करो।

८—जब हम पहली बार किसी से मिलें तो हमें अपने चेहरे से प्रसन्नता प्रकट करना और मुस्कराना चाहिए। मेघों को चीर कर निकलने वाले सूर्य के समान, वह मुस्कान उन्नत, प्रशस्त तथा मनोहर होनी चाहिए। बहुत थोड़े लोग मुस्कान का प्रतिरोध कर सकते हैं।

वाद-विवाद मत करो। तर्क-वितर्क का परिणाम बहुधा मनोमालिन्य होता है। इससे मित्रता भंग हो जाती है। हमें थोड़ी सी सामान्य बुद्धि का उपयोग करके दूसरे व्यक्ति

को अपना दृष्टि-कोण बनाए रखने देना चाहिए। उसका दृष्टि-कोण हमें चाहे कितना ही असंगत क्यों न जान पड़े वह फिर भी उसे अच्छा लगता है।

९—दूसरे मनुष्य को कोई ऐसी चीज़ दीजिए जिसके अनुसार वह अपना जीवन बिता सके। दूसरे शब्दों में, किसी को बदनाम न करो। न्यायसंगत सीमा के भीतर, लोगों पर विश्वास कीजिए। इस से बहुत से लोग आप के साथ मिल कर काम करने लगेंगे।

१०—इस बात को कभी न भूलिए कि शिष्टता पर कुछ पैसे नहीं लगते।"

---

१६. मित्रता बनाने और बढ़ाने की रीति

वाटिका में पौधों की भाँति, मित्रता के लिए भी बड़े यत्न और सतर्कता का प्रयोजन रहता है, तभी वह बढ़-फूल कर सुखदायक हो सकती है।

प्रसिद्ध अमेरिकन विचारक और लेखक, राल्फ वाल्डो इमर्सन, लिखता है कि मित्रता 'मनुष्य के समग्र मूल्य' से कुछ भी कम नहीं माँगती। इस से उसका अभिप्राय यह है कि यह केवल हमारे मनोभाव ही नहीं वरन् हमारी उच्चतम मानसिक क्षमताओं की भी माँग करती है। मित्रता के विषय में उसका कथन है :—

"इसे गिर कर कभी भी कोई साधारण तथा अवधारित चीज़ नहीं बनने देना चाहिए, वरन् सदा सतर्क तथा आविष्कार-कुशल होना चाहिए।"

मित्रता को प्रगाढ़ करने के उद्देश से अपनी सतर्कता तथा आविष्कार-कुशलता के उपयोग की सर्वोत्तम रीति यह है कि पहले अपने मित्रों की आवश्यकताओं को, और तब, उन आवश्यकताओं को पूरा करने के सब से अधिक प्रभावोत्पादक साधनों को मालूम करने की निरन्तर चेष्टा की जाय। प्रत्येक मनुष्य के लिए सब समय सबसे गूढ प्रयोजन उसकी इस बात की लालसा होती है कि उसकी आवश्यकता का अनुभव किया जाय और उसके महत्त्व को समझा जाय। सुप्रसिद्ध मनो-विज्ञानी, विलियम जेम्ज़, ने लिखा है—"मानव प्रकृति का

गूढ़तम मूल तत्व मनुष्य की यह आकांक्षा है कि उसके गुणों का आदर हो।"

यदि आप अपने मित्रों की इस आकांक्षा को पूरा कर सकते हैं, तो आप विश्वास के साथ कह सकते हैं कि आपने उनकी यथासंभव सबसे अधिक मूल्यवान सेवा कर दी।

किसी व्यक्ति पर यह प्रकट करने के लिए कि आप उसके गुणों का आदर करते हैं, पहली रीति उसमें सच्ची दिलचस्पी दिखाना है। डेल कार्नेगी अपनी पुस्तक "लोगों को मित्र बनाने तथा प्रभावित करने की रीति" में, जिसका हिन्दी अनुवाद 'लोक व्यवहार' के नाम से प्रकाशित हो चुका है, कहता है—"दूसरे लोगों में दिलचस्पी रखने वाला बन कर आप दो मास में उससे अधिक मित्र बना सकते हैं जितने कि आप दूसरे लोगों को तुम्हारे अपने में दिलचस्पी लेने वाला बनाने का यत्न करके दो वर्ष में बना सकते हैं।"

लोगों में अकृत्रिम स्नेह दिखलाने के लिए, आप के लिए आवश्यक है कि आप उनकी बात ध्यान से सुनें। यह बात पर्याप्त सरल है तो भी यह देख कर आश्चर्य होता है कि ऐसे लोग कितने थोड़े हैं जिन्होंने जो कुछ दूसरों को कहना है उस पर मन को एकाग्र करने और तत्पर मन, समझदारी और अकपटता के साथ ध्यानपूर्वक सुनने की कला को अच्छी तरह सीखा है।

गाँधी जी के संबंध में कहा जाता है कि जो कुछ दूसरे को कहना होता था उसे ध्यानपूर्वक सुनने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहते थे। इतना ही नहीं, वरन् वे बड़ी उत्सुकता के साथ सुनते थे, मानो वे पहले से देख लेते थे कि उनके साथी को

जो कुछ कहना है वह ध्यान से सुनने योग्य है। किसी मित्र पर यह प्रकट करने के लिए कि आपके मन में उसके प्रति श्रद्धा है और आप उसकी योग्यता का आदर करते हैं, इससे अच्छी रीति मिलना कठिन है।

निस्सन्देह आप सब समय ध्यान से सुनते ही नहीं रह सकते। परन्तु जब आप बातें करने लगें तो आपके वार्तालाप का मुख्य विषय आपका अपना आप नहीं, वरन् दूसरे व्यक्ति की दिलचस्पी की बातें होनी चाहिएँ। यदि आप दूसरे व्यक्ति के उद्देश्यों और आकांक्षाओं के विषय में बातें करेंगे, तो आप के लिए लोगों के विश्वास तथा मैत्री को प्राप्त करना और उसे बनाए रखना बहुत सरल होगा।

यदि आप इस कथन की सत्यता की परीक्षा करना चाहते हैं, तो अपनी मित्र-मंडली के विविध व्यक्तियों पर विचार कीजिए, और उन में से उस मित्र को चुनिए जिससे आपका मन सब से अधिक प्रसन्न होता है। संभवतः, आप देखेंगे कि वह मित्र वही होगा जो आपके साथ आपके अपने उद्देश्यों, आकांक्षाओं और व्यापारों के विषय में बातें करके आनन्दित होता है।

यह मेरा अपना अनुभव है। मुझे जात-पाँत को मिटाने में बड़ी रुचि है। वास्तव में यह काम मेरे जीवन का मुख्योद्देश्य सा ही बन गया है। इस विषय में तीव्र तथा निष्कपट रुचि दिखा कर अनेक लोग मेरे स्नेहभाजन बन गये हैं।

मैंने दूसरे लोगों के साथ उन चीज़ों और उन व्यक्तियों के विषय में जिनका उनके मन में बड़ा महत्त्व है—जैसा कि उनकी होने वाले सगाई, विवाह, या परिवार, उनके सखा-

सहेलियाँ, पति, पत्नी, या सन्तान; उनके नये काम; उनके धर्म; उनके शौक; या उनकी गाय, भैंस या कुत्ते—बातें करके उनका विश्वास तथा मित्रता प्राप्त की है।

सब से गूढ़ प्रयोजन

मान लीजिए, श्री. क्ष नाम का एक व्यक्ति है। वह मुझे बहुत नापसन्द करता देख पड़ता है। जब उसकी सगाई होती है तो मैं जाकर उसे बधाई देता और उसकी मँगेतर लड़की तथा उनके अगामी विवाह के सबन्ध में बातें करता हूँ। परिणाम यह होता है कि श्री क्ष अब मुझे अपना विश्वास-पात्र समझने लगता है और अपने निजी कामों में मुझ से परामर्श करता है।

दूसरे व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण अनुभव कराने के साधन के रूप में उस व्यक्ति की दिलचस्पी की बातें करने को जितना भी महत्त्व दिया जाए, थोड़ा है। कारण यह कि यह व्यक्ति के गूढ़तम प्रयोजनों को पूरा करने की रीति है। यह पुरुष हो या स्त्री, उसका विश्वास प्राप्त करने और मित्रता को बढ़ाने तथा दृढ़ बनाने का सर्वोत्तम साधन है।

यह समझने की भूल न कीजिए कि इस विधि का प्रभाव केवल उन लोगों पर होता है जिनमें अपने को हीन समझने का भाव है। चतुर से चतुर मनुष्य भी और वे भी जो बड़े उच्च पदों पर आरूढ़ हैं, अपने महत्त्व के प्रति किसी प्रकार की अकपट श्रद्धाञ्जलि से प्रसन्न होते हैं।

जब कभी भी मुझे चतुर एवं विख्यात लोगों से मिलने का सुयोग हुआ है, मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ है कि

उनके काम, उनके कार्यक्रम और उनकी प्रगति में मेरे रुचि दिखाने से वे कितने अधिक प्रसन्न हुए हैं और मेरे द्वारा की जाने वाली उनकी प्रशंसा से उनको कितना अधिक प्रोत्साहन मिला है।

उपन्यासकार का आरम्भ

क्या कोई कल्पना कर सकता है कि डाँटे गेवरियल रोज़ॅट्टी जैसा उन्नसीवीं शताब्दी का अँग्रेज़ी कवि तथा चित्रकार एक लोहार के पुत्र की सम्मति पर कुछ ध्यान देगा ?

इस पर भी प्रत्येक मनुष्य प्राणी में आत्म-श्रद्धा की इतनी गहरी लालसा रहती है कि इस बाहर से तुच्छ देख पड़ने वाले व्यक्ति द्वारा की जाने वाली प्रशंसा का भी रोजॅट्टी ने अन्तर से स्वागत किया।

इस तरुण ने जो चिट्ठी रोजॅट्टी को लिखी उससे रोज़ॅट्टी को इतना गहरा सन्तोष प्राप्त हुआ कि उसने सचमुच उस तरुण को अपना सचिव बनाने के लिए बुला भेजा। निमन्त्रण स्वीकार हो गया और यह घनिष्ठ तथा दृढ़ मित्रता का आरम्भ था। जो तरुण सचिव बना वह अब बहुत प्रसिद्ध है—उसका नाम उपन्यासकार हॉलकेन था।

यदि आप अपने लिए मालूम करना चाहते हैं कि मित्र बनाने का काम कैसे आरम्भ करना चाहिए, तो उस अतीत काल का चिन्तन कीजिए जब लोगों को आप इसलिए नापसन्द करते थे क्योंकि उन्होंने आपको एकाकी, महत्त्वहीन तथा अनावश्यक अनुभव कराया है। तब किसी दूसरे ऐसे अवसर का चिन्तन कीजिए जब किसी व्यक्ति ने आपकी

संगति के लिए अकपट आकांक्षा प्रकट की थी और आपके कामों में सच्ची रुचि दिखलाई थी—ऐसे ही पुरुष या स्त्री के प्रति आपका स्नेह प्रबलतम तथा गम्भीरतम होगा।

इसका उलट भी ठीक है। दूसरे लोग आप से सब से अधिक तब प्रसन्न होंगे जब आप उन पर प्रकट करेंगे कि आप उनके तथा उनके कामों के सम्बन्ध में सचमुच बात सुनना चाहते हैं।

अपने मित्रों को यह अनुभव कराने के लिए कि वे आपके जीवन में कितना बड़ा महत्त्व रखते हैं निम्नलिखित कुछ क्रियात्मक सुझाव हैं—

जब आप उनको पत्र लिख कर या फोन से मिलने के लिए अपने यहाँ बुलाएँ, तो उन्हें उत्साहपूर्वक और अकपट भाव से बुलाइए। उन्हें कहिए कि मैं आप से मिलने के लिए उत्सुक हो रहा हूँ। इसके साथ ही, रेल-गाड़ियों या बसों के समयों का निश्चय करके और कदाचित् रेलवे स्टेशन या बस स्टॉप पर उनकी अगवानी का प्रबन्ध करके, अपनी उत्सुकता को प्रमाणित कीजिए।

एक स्त्री गाँव में रहती है। परन्तु वह अपनी सहेलियों के आतिथ्य के लिए इतनी व्यग्र है कि वह कई बार कार, रिक्षा या टाँगा किराया पर लेकर उन्हें स्टेशन से घर लाने के लिए भेज देती है।

जब आपके साथ आपके मित्र हों तो जो बातें उनके जीवन में उनके लिए सब से अधिक महत्त्व की हैं उन्हीं के विषय में बातें करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित कीजिए।

जब आप किसी मित्र से मिलने के लिए जाने लगें तो अच्छा यह है कि पहले ही इस बात को सोचने पर कुछ

मिनट खर्च कीजिए कि उस व्यक्ति को किन बातों में अधिक रुचि है और कि जब आप पिछली बार उससे मिले थे तब से अब तक क्या-क्या परिवर्तन हो गए हैं।

किसी व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण अनुभव कराने की एक दूसरी रीति यह है कि जिस विषय में आपको परामर्श लेने का प्रयोजन है उसके सम्बन्ध में उसका मत पूछिए।

मित्रता को प्रगाढ़ और दृढ़ बनाने का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यद्यपि लोगों की गूढ़तम आवश्यकता—अपने को महत्त्वपूर्ण अनुभव करने—को पूरा करना है, तो भी इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि लोगों की स्पष्टतः फालतू और तुच्छ आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को पूरा करना भी कभी-कभी इस उद्देश्य की पूर्ति का एक बहुमूल्य साधन होता है।

केवल इतना ही प्रकट करना कि आप देखते और समझते हैं कि एक व्यक्ति को—कदाचित् किसी छोटे से ढंग से—सहायता का प्रयोजन है, बहुधा उसे इस बात का अनुभव कराने के लिए पर्याप्त होता है कि वह आपकी दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रकार, अपने मित्रों को यह दिखलाना कि आपने उनकी सूक्ष्म सनकों और रुचियों को देख लिया है, मनुष्य में अपने को बड़ा गिनने के भाव का जो प्रयोजन गहरा गड़ा है उसे पूरा करने की यह एक दूसरी प्रभावोत्पादक रीति है।

इन सिद्धान्तों पर आचरण करने का यत्न कीजिए। आप देखेंगे कि इसके परिणाम स्वरूप होने वाली गूढ़तर मित्रता के कारण आपका अपना जीवन और व्यक्तित्व अधिक मूल्यवान् एवं फलप्रद हो जायगा।

---

२०. लोगों के साथ निभाने की कला

एक व्यक्ति लिखता है कि जब मैंने पहले पहल काम करना आरम्भ किया तो जब जब भी मेरा उच्चाधिकारी मेरे साथ अच्छी तरह न बोलता मैं सदा चिन्तित और भयभीत हो जाता। उसके चिड़चिड़ेपन से मैं यह परिणाम निकालता कि मैं अपने काम से उसे सन्तुष्ट नहीं कर रहा, यद्यपि मैं नहीं सोच सकता था कि क्यों। इस बात को समझने में मुझे कई वर्ष लगे कि अधिकारी के जीवन में मुझ से भी अधिक महत्त्व-पूर्ण दूसरे भी प्रभाव हैं और वे ही उसके जीवन को असन्तुष्ट बनाते हैं।

केवल अपने मानसिक क्षेत्र को अपने से परे ले जाने से ही हम कठिन लोगों के साथ निभाने की कला में सुदक्ष हो सकते हैं।

वास्तव में किसी व्यक्ति की मित्रता प्राप्त करने की रीति इस बात में नहीं कि हम क्या कहते हैं या हम किस प्रकार आचरण करते हैं, वरन् इस बात में है कि हम किस प्रकार सोचते हैं। हमारे विचार ही हमारे मानसिक भाव का निश्चय करते हैं, और हमारा मानसिक भाव हमारे वचन तथा कर्म पर शासन करता है। अपने चिन्तन में जिस आधारभूत सिद्धान्त को सीखने की आवश्यकता है, वह है अपने छोटे से दृष्टिकोण से बाहर निकल कर दूसरे व्यक्ति के मन में पहुँचना। यदि हमारे प्रति कोई अविनीत या रूखा हो तो इसे अपना व्यक्तिगत अपमान समझ कर कुपित होने के स्थान में हमें

अपनी अवस्था को भूल जाने का यत्न करके दूसरे व्यक्ति की असन्तुष्ट दशा का कारण ढूँढ़ना चाहिए।

बहुधा दूसरे व्यक्ति के हमारे प्रति मानसिक भाव का कारण हमारा कोई वचन या कर्म नहीं, वरन् उसके जीवन के केन्द्र में कोई उससे भी कहीं अधिक गहरा हेतु होता है।

मोहन को अपने बड़े भाई, रमण, के साथ समय काटना बड़ा कठिन लगता था, क्योंकि रमण उससे बहुत द्वेष करता था। यदि मोहन की कुछ वेतन-वृद्धि होती या उसे एक आध दिन की फालतू छुट्टी मिल जाती, तो रमण प्रसन्न होने के स्थान में मोहन को घबराहट में डालने की भरसक चेष्टा करता। मोहन को जो बात समझ में नहीं आ रही थी वह थी उसकी बाह्यतः निरर्थक तुच्छ बातों पर उसके भाई का द्वेष। खाना खाते समय रमण बड़े ध्यान से देखता रहता था कि मोहन को कहीं उस से अधिक मक्खन या अधिक बड़े आम तो नहीं दिए जाते।

ये सब बातें रमण को अपने भाई के प्रति कुपित कर देतीं। एक दिन रमण ने शिकायत की कि मोहन को मेरी अपेक्षा अच्छी चपाती दी गई है। तब मोहन ने अनुभव किया कि रमण को इन विभिन्न वस्तुओं के कारण मेरे साथ द्वेष नहीं हो सकता, वरन् उसके द्वेष का कारण अवश्य ही कोई दूसरा गुप्त तथा अधिक गहरा है।

बस, मोहन अपने भाई के जीवन में इस द्वेष का वास्तविक कारण ढूंढ़ने लगा। तब उसने मानव प्रकृति को समझने पर एक पुस्तक पढ़ी। उस पुस्तक के अध्ययन से उसे ज्ञान हो गया कि परिवार में एक बालक के दूसरे बालक से पहले या

पीछे जन्म लेने से जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। इतना ही नहीं, वरन् व्यक्ति के जीवन में सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव वे होते हैं जो उसके प्रारम्भिक बाल्य काल के दिनों में उस पर पड़ते हैं।

इन दो बातों से मोहन ताड़ गया कि रमण उससे क्यों इतना द्वेष करता है। अपने जीवन के पहले तीन वर्षों में रमण के सिवा उसकी माता के पास प्यार करने के लिए दूसरा कोई बच्चा न था। घर के सब लोग रमण के आदेशों का पालन करते थे। तब तीसरे वर्ष की समाप्ति पर एक और नन्हे भाई ने जन्म ले लिया। उस नन्हे भाई ने न केवल रमण के कई खिलौने ही बाँट लिए, वरन् सब से बुरी बात यह हुई कि उस ने उसे मातृ-स्नेह के एक बहुत बड़े भाग से वंचित कर दिया। स्नेह का केन्द्र बना रहने के बजाय उसे परे धकेल कर पृष्ठ-भूमि में फेंक दिया गया।

मोहन ने अनुभव कर लिया कि रमण के बाल्यकाल में इस धक्के ने उस के समूचे जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। इससे भी अधिक उसने समझ लिया कि संयोग से रमण का जन्म पहले हो गया था, इस में रमण का अपना कोई दोष न था। इसलिए उसके द्वेष के लिए उसे दोष देना या उससे घृणा करना ठीक नहीं।

अपने मन में सारी बात के इस अधिक बड़े चित्र को ले आने से, मोहन को अब अपने भाई के प्रति रोष के भाव को दबाना अधिक सुगम जान पड़ता है। जब रमण उसके प्रति कोई दयाहीन बर्ताव करता है, तो मोहन उसके बदले में कोई दयापूर्ण शब्द कहता या दयापूर्ण कर्म करता है। इस प्रकार उसने

घृणा तथा विरोध को प्रेम तथा ऐक्य में रूपान्तरित कर दिया है।

अपने दृष्टिक्षेत्र को विस्तृत करना न केवल कठिन लोगों के साथ निभाने के लिए, वरन् किसी सामाजिक समूह या सामाजिक सम्बन्ध में प्रभावोत्पादक होने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। जब तक हम अपने-आप से परे सोचने के लिए जानबूझ कर प्रयास नहीं करते; हमें अपने ही जीवनों की छोटी-छोटी बातों में इतना निमग्न हो जाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि हम दूसरों के साथ काटने में असली बात को छोड़ जाते हैं। हम में यह सोचने की प्रवृत्ति है कि यह बात बड़े ही महत्त्व की है कि एड़ी से चोटी तक हमारा रूप सर्वाङ्गपूर्ण हो और कि हमारे सम्बन्ध में छोटे-से-छोटा दोष भी भारी दुर्घटना से कुछ कम नहीं।

परन्तु वास्तविक सचाई यह है कि हमारे रूप में किसी हलके से धब्बे के कारण, या हम से होने वाली किसी मूर्खता-पूर्ण भूल के कारण, हमारा पड़ोसी हमें पहले से बुरा समझने नहीं लगता। अपने यश को बढ़ाने के लिए जो काम हम करते हैं (या जिस काम की हम उपेक्षा कर देते हैं) उसका उसकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं। उसकी दृष्टि में तो उसी काम का महत्त्व है जो हम इसके यश तथा प्रभाव को बढ़ाने के लिए करते हैं।

हम में कितने ही दोष या त्रुटियाँ क्यों न हों, हम फिर भी लोकप्रिय हो सकते हैं, यदि हम इस बात को भली-भाँति समझ लें कि दूसरे लोग हम से उनकी प्रशंसा के लिए कितने लालायित हैं। बिलियम जेम्ज़ नाम का एक बड़ा मनोविज्ञानी

कहता है—"मानव प्रकृति की यह एक गम्भीरतम मनोवृत्ति है कि कोई दूसरा हमारी प्रशंसा करे।" इसी प्रकार एक दूसरा मनोविज्ञानी कहता है कि "बड़े से बड़ा सफल मनुष्य भी कामना करता है कि समाज में उसकी बार-बार प्रशंसा हो।"

दूसरों के प्रति आदर तथा प्रशंसा का भाव दिखलाने की रीतियाँ मालूम करना कठिन नहीं। यदि हम उनके प्रति केवल जागरूक और सतर्क रहें; तो जो लोग अपने को निकृष्ट अनुभव करते हैं उनकी सच्ची प्रशंसा के लिए, जो विपन्न देख पड़ता है उसके प्रति एक दया का वचन कहने, जो अस्वस्थ है उससे उसके स्वास्थ्य का हाल पूछने के लिए बार-बार सुयोग आते रहते हैं।

ऐसे सुयोगों से लाभ उठा कर, हम अपने पड़ोसी में आत्म-श्रद्धा का उच्च भाव उत्पन्न करने में सहायता दे सकते हैं। उसकी दृष्टि में अपना मूल्य बढ़ाने की यह अतीव निश्चित रीति है।

एक अकाऊंटेण्ट का विवाह एक ऐसी स्त्री से हुआ था जिसे अकाऊँटेण्ट के व्यवसाय का उतना ही ज्ञान था जितना एक घसियारे को परमाणु-वाद का होता है। फिर भी वह कहता है—

"मैं अपनी स्त्री को मेरे कार्यालय में उत्पन्न होने वाली अतीव प्राविधिक समस्याएँ सुना सकता हूँ, और ऐसा प्रतीत होता है कि वह उनको सहजज्ञान से ही समझ जाती है। मुझे घर जाकर उसे अपनी समस्याएँ सुनाने में बड़ा सुख मिलता

है, क्योंकि वह मेरी बात को सहानुभूति और समझदारी के साथ ध्यानपूर्वक सुनती है।

ठीक है, कोई स्त्री पति की बातों को ध्यानपूर्वक और समझदारी के साथ सुनने से पति की जितनी प्यारी बन जाती है उतनी अप्सरा सा सुन्दर मुख रखने से नहीं। इससे उसके पति की भलाई भी अधिक होती है।

आगे तीन ऐसे नियम दिए जाते हैं जिन से कोई भी पत्नी अच्छी श्रोता बन सकती है।

१. अपने चेहरे की मुखभङ्गी और शरीर की समतुलित अवस्था द्वारा प्रकट करो कि तुम दत्तचित्त होकर सुन रही हो।

२. समझदारी के प्रश्न पूछना सीखो।

३. पति का कभी विश्वास-घात न करो। उसकी कोई गुप्त बात किसी दूसरे को न बताओ।

यदि आप किसी से मुस्करा कर मित्रोचित भाव से मिलेंगे तो वह भी अवश्य आप से मुस्करा कर मिलेगा। हमारे लिए सदा ही प्रसन्न रहना कठिन है। जो लोग रूखे-सूखे और 'डरावने' समझे जाते हैं, हो सकता है कि वे किसी प्रकार की आर्थिक चिन्ता या किसी दूसरे कष्ट में पड़े हों।

यदि हम ढूंढ़ सकें तो अधिकांश लोगों में कई पसन्द आने वाले सद्‌गुण होते हैं—इस बात को स्मरण रख कर बातचीत द्वारा उन सद्‌गुणों को मालूम करने का यत्न करो। इससे आपको इस बात का संकेत मिल जायगा कि उनको किन बातों में रुचि है। फिर आगे का काम प्रायः बहुत सुगम होता है।

बड़ी बात यह है कि हम लोगों को सहानुभूति के साथ समझने और उनके कष्टों को तत्परता के साथ ध्यानपूर्वक सुनने का यत्न करें और इस गुण को अपने में उत्पन्न करें। संसार में सब प्रकार के लोगों से मिल कर देखिए। आप अनुभव करेंगे कि वे हृदय में जीवन की सादा बातों से प्रेम करते हैं। सदा दत्तचित्त होकर दूसरों की बातें सुनते रहने की अपेक्षा, उनके कामों, उनके शौकों, और दिलचस्पियों के बारे में प्रश्न पूछिए। आपको देखकर आश्चर्य होगा कि, यदि वे समझें कि आप को उनमें पर्याप्त रुचि है तो वे कितना खुलकर बातें करने लगते हैं। लोगों को पसंद करने और उनके शौकों तथा परिवारों में दिलचस्पी लेने से ही उनके साथ हमारे सुखद संबन्ध हो सकते हैं। जब कोई व्यक्ति आपके बच्चों की प्रशंसा करता है तो आपको प्रसन्नता होती है। इसी प्रकार जब आप दूसरे के बच्चों की प्रशंसा करते हैं तो दूसरे आप से प्रसन्न होते हैं। बच्चे आप भी आपसे प्रेम करने लगते हैं और उनके द्वारा उनके माता-पिता आपके मित्र बन जाते हैं।

निर्दयभाव का कारण सदा मानसिक या शारीरिक अस्वस्थता होती है। इसलिए किसी को उसके निर्दयभाव के लिए दोष देने के बजाए उस पर दया दिखानी चाहिए। ऐसा समझने से आप आसानी से चिढ़ेंगे नहीं। परिणाम यह होगा कि आप को अधिकाँश लोग ऐसे देख पड़ेंगे जिनको आप पसंद करते हैं।

खिले चेहरे और मंद मुस्कान के साथ मिलिए। उनके नाम, चेहरे, उनकी पसंद और नापसंद की बातें याद रखिए और उनके वार्तालाप में सच्ची दिलचस्पी लीजिए।

लोगों के साथ निभाने में रसिकता एक बहुत ही आवश्यक चीज़ है। सब कोई खिलखिलाहट के साथ हँसकर प्रसन्न होता है और जो लोग अपने आप पर भी हँस सकते हैं वे लोगों को बड़ी आसानी से मित्र बना सकते हैं। मज़ाकिया या रसिक होना एक बहुत बड़ा गुण है, परन्तु मज़ाक सदा किसी ऐसे अभागे व्यक्ति का नहीं होना चाहिए जो उससे चिढ़ता हो। यदि परिहास अच्छे प्रकार का हो तो इससे वार्तालाप बोझल नहीं होता।

लोगों को इस बात का ज्ञान कराना चाहिए कि उनसे मिलकर आपकी प्रसन्नता होती है। मनुष्य को यह अनुभव करके बड़ा संतोष होता है कि आप उससे मिलकर प्रसन्न होते हैं और उससे मिलना चाहते हैं। इससे महत्त्व की वह कामना पूरी होती है जो हम सब में पाई जाती है। इसके समान दूसरी कोई भी चीज़ मित्रता को स्थायी और सुखद नहीं बनाती।

कई लोगों के अन्तराल में कई ऐसी बातें दबी पड़ी रहती हैं जिन्हें वे किसी दूसरे को सुना कर अपने हृदय का भार हलका कर लेना चाहते हैं। परन्तु उनको कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता जिसे वे अपनी कथा सुना सकें। उनकी हृत्तंत्री के उस तार को झंकृत करने से, उनकी दुःख-वार्ता को सुन लेने से आप उनके प्रेम-पात्र बन सकते हैं।

इसके लिए चातुर्य की आवश्यकता होती है। लोगों से यह पूछते फिरने से कुछ लाभ नहीं कि आप के पास क्या कोई ऐसी बात है जिसे सुना कर आप अपने हृदय का भार हलका रखना चाहते हैं। ज्यों ही आप अपने नव-प्राप्त मित्र को

अपने शब्दों से नहीं, वरन् अपने कर्म से निश्चय करा देंगे कि आप उसकी हँसी नहीं कर रहे हैं और कि उस गुप्त बात को किसी दूसरे पर प्रकट करने की आपकी कोई इच्छा नहीं, तो वह तत्काल ही आपको वह छोटी सी बात सुनाने लग जाएगा जो चिरकाल से उसके हृदय पर बोझ बनी हुई थी। किसी व्यक्ति का विश्वास प्राप्त कर लेने के बाद उसकी सहायता करने का यत्न करना चाहिए। कभी-कभी आप यह सहायता कर भी सकेंगे। इससे आपको अनेक मित्र और मानव-प्रकृति का ज्ञान प्राप्त होगा।

अपना काम छोड़ कर भी किसी की बात को ध्यानपूर्वक सुनने से आप उसे अपना मित्र बना लेते हैं। मनुष्य सुनकर उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना सुना कर होता है।

---

२१. आज के संसार में सुखी होने का रहस्य

आप जिस नगर में रहते हैं उसके बड़े बाज़ार में खड़े हो जाइए और वहाँ आने-जाने वाले लोगों के चेहरों को ध्यान से देखिए। आप अनुभव करेंगे कि आज के संसार को सुखी रहने का रहस्य सीखने की बड़ी आवश्यकता है। जिस युग में हमारे दादा-दादी रहते थे आज हम उससे अधिक परिपूर्ण, अधिक द्रुतगामी और अधिक उज्ज्वल युग में रहते हैं। परन्तु क्या हम उनके बराबर सुखी हैं ?

सुखी रहने के रहस्य वस्तुतः बड़े सरल हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

हम भारी भूल करते हैं यदि हम समझते हैं कि सुखी रहने के लिए हमें सदा कोई भिन्न काम करना चाहिए या किसी नई जगह जाना चाहिए। हम केवल अनुभव नहीं करते, अन्यथा हमारे सामान्य जीवन में सुख के अक्षय साधन हैं। एक विद्वान् का कथन है, "सदा सादा-सी बातों में हमें प्रसन्नता पाना सिखाइए।"

हम उस कला को बहुत कुछ खो बैठे हैं। हम अनुभव करते हैं कि यदि हमें अपने जीवन से कुछ सुख प्राप्त करना है तो सदा किसी-न-किसी नई तथा उत्तेजक बात का होना आवश्यक है। इस पर भी यदि हम अपने सामान्य जीवन के आनन्दों तथा अद्भुत व्यापारों के प्रति संवेदनशील होते तो हम निश्चय ही कभी न ऊबते। एक छोटी-सी वाटिका, वरन् एक गमला भी चिरस्थायी आनन्द का उद्गम हो सकता है।

कोई भली-भाँति किया हुआ काम, चाहे वह काम कितना ही छोटा क्यों न हो, स्थायी सन्तोष का कारण होता है।

हमारे नगर का स्थानीय पुस्तकालय हमारे लिए पृथ्वी के अन्त तक जा पहुँचने के द्वार खोल देता है। क्रीड़ा करते हुए बच्चे हमें स्वर्ग की झाँकी दिखा सकते हैं। जिन लोगों से हम मिलते हैं वे हमारे लिए कभी समाप्त न होने वाली दिलचस्पी तथा जानकारी का उद्गम हो सकते हैं। ये तो साधारण जीवन के अनन्त प्रभेदों में से केवल थोड़े से हैं।

दुःख तो यह है कि यद्यपि ये दिलचस्पी के मूल हम सब के लिए मुक्त हैं, तथापि हम में से बहुत थोड़ों ने अपने को उनके प्रति संवेदनशील बनाया है। वे हमारे पास से होकर निकल जाते हैं, और हम उनसे कुछ भी लाभ नहीं उठाते। यदि हम अपनी आँख, कान, मन तथा जीवनी-शक्ति को उन्नत करके पूर्णतर सतर्कता के लिए तैयार कर लें, तो सामान्य जीवन दिलचस्पी और सुख का एक भरा-पूरा धनागार बन जायगा।

अपने को ठीक प्रकार की संवेदनशीलता के लिए प्रशिक्षित करने पर बहुत कुछ निर्भर करता है। एक मनुष्य के जीवन का अधिकांश देहात में बीता था। वह एक मित्र के साथ एक बड़े नगर के बाज़ार में से होकर जा रहा था। सहसा वह बोल उठा, "मैं एक झींगुर का शब्द सुन रहा हूँ!" उसका मित्र हँस पड़ा। किसी भी दूसरे व्यक्ति को झींगुर जैसी कोई चीज़ देख न पड़ी थी। परन्तु निश्चय ही, बाज़ार के एक ओर उन्हें एक खिडकी में एक झींगुर मिला। तब उस ग्रामीण ने फर्श पर एक इकन्नी फ़ेंकी। तत्काल आधी दर्जन मनुष्य वहाँ इकट्ठे हो गये।

वह बोला, "देखिए, सब कुछ उस बात पर निर्भर करता है जिसे सुनने का आपको प्रशिक्षण मिला है। मेरा कान सिक्कों की अपेक्षा झींगुर के अधिक अनुकूल है।"

यदि हम अपने को सामान्य जीवन के आनन्दों तथा अद्भुत व्यापारों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए प्रशिक्षित करते हैं, तो हम सुख का एक रहस्य सीख लेते हैं।

सुख के सम्बन्ध में एक दूसरी भूल जो सामान्यतः की जाती है यह है कि सुख किसी वस्तु को प्राप्त करने और अपने पास रखने में, और दूसरों से सेवा कराने में है। परन्तु बात ऐसी नहीं। यह इससे भी कहीं अधिक दूसरों को कुछ देने और दूसरों की सेवा करने में है। सब से सुखी वे हैं जिनके जीवन दूसरे लोगों के हितों में बीतते हैं।

आप आसानी से इसकी परीक्षा करके देख सकते हैं। यदि आप अपने को दबे हुए, हताश या पराभूत अनुभव करते हैं, तो कोई ऐसी सेवा ढूँढिए जो आप किसी दूसरे के लिए मुफ्त कर सकते हैं। उसे कर दीजिए। आप अपना विषाद तथा नैराश्य बहुत शीघ्र भूल जायँगे। हम में से अधिकाँश लोग अपने-आप में, अपनी निजी समस्याओं तथा कठिनाइयों, पीड़ाओं और कष्टों से बहुत अधिक अच्छादित रहते हैं। सेवा आत्म-संताप का सब से बड़ा प्रतिकार है।

एक धनाढ्य मनुष्य घोड़े पर से गिर कर आयुभर के लिए लूला हो गया। पहले कुछ मास उसे बहुत संताप हुआ। तब उसके मन में एक विचार आया। उसने उन लोगों के लिए अपना घर खोल दिया जो उसी की तरह लूले हो गये थे। उससे वह एक दुःखी और एकान्तवासी व्यक्ति बनने के

बजाय, जैसा कि वह बनने लगा था दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करने में लग जाने से अपनी असमर्थता को भूल कर एक समुज्ज्वल, सुखी व्यक्तित्व बन गया। उस मनुष्य ने आत्म-संताप को छोड़ कर दूसरों की सेवा का व्रत धारण करने का जो उदाहरण प्रतिष्ठित किया उसका हम भी अनुकरण कर सकते हैं। दूसरों की चिन्ता करना अपने दु:खों एवं नैराश्यों से छुटकारा पाने की सब से निश्चित रीति है।

सुख का रहस्य सेवा में है—

फिर सुख का एक निश्चित मार्ग हमारे अन्त:करण में से है। जिस मनुष्य का अन्त:करण शुद्ध है वह सुखी मनुष्य है। हम ऐसे सुस्त, मंद-बुद्धि मूर्ख हैं कि इस शिक्षा को सीखने में हमें लम्बा समय लग जाता है। पर सचाई यह है कि कोई बुराई करके हम कभी भी सच्चा, ठोस, स्थायी संतोष लाभ नहीं कर सकते। हो सकता है कि अच्छा मनुष्य कभी कभी बुरे मनुष्य की अपेक्षा अधिक लोगों को अपना शत्रु बना ले, परन्तु यह बात सदा सच रहती है कि उसके पास एक ऐसा गहरा और स्वच्छ आन्तरिक सन्तोष है जो उससे कोई नहीं छीन सकता। यह एक मनोवैज्ञानिक सचाई है कि अपराधी अन्त:करण के वास्तविक और शारीरिक दुष्परिणाम हो सकते हैं।

उस मनुष्य को क्या सुख हो सकता है जिस का हृदय पुलिस को देखते ही डर से बंद होने लगता है? कोई मनुष्य सुखी कैसे हो सकता हैं यदि उसके मन में कोई ऐसा पापपूर्ण रहस्य छिपा है जिस का यदि उन लोगों को ज्ञान हो जाय जो

उस पर विश्वास और उसका सम्मान करते हैं तो वे उस से दूर भागने लगेंगे ?

सुख एक नैतिक सद्गुण है। सच्चा सुख, जितना हम बहुधा समझते हैं उससे अधिक, चरित्र पर निर्भर करता है।

सुख के दो बड़े शत्रु अरक्षितता और विफलता हैं। सुखमय तथा सफल जीवन के लिए शक्ति का भाव और उद्देश्य-बुद्धि का होना आवश्यक है। इन दो चीजों के अभाव में किसी व्यक्ति का सुखी होना कठिन है। एकाधिक और विभिन्न प्रकार के त्रास जो आज संसार में इतने फैल रहे हैं, विश्वास के अभाव का लक्षण हैं।

संसार में सब से सुखी मनुष्यों में से अनेक वे लोग हैं जिन में अटल धर्म विश्वास है। कम से कम इतनी बात तो सत्य है कि जो लोग किसी बात में या किसी मनुष्य में विश्वास नहीं करते वे सदा हताश, दुःखी और तुनुक मिजाज होते हैं।

किसी बात में प्रगाढ़ रूप से विश्वास करना जीवन के उच्चतम सुख को मालूम कर लेना है।

जिस चीज़ में हम विश्वास रखते हैं जितनी अधिक ऊँची और श्रेष्ठ वह होगी उतना ही प्रचण्ड हमारा सुख होगा। इस लिए यदि हम सच्चे सुखी होना चाहते हैं तो जिस उच्चतम और सर्वोत्तम चीज को हम जानते है उसमें हमारा अखंड विश्वास होना आवश्यक है।

अब अपने व्यक्तित्व के विकास की रीति सुनिए—

रूप का बड़ा महत्त्व है। साफ-सुथरा रहिए। जहाँ तक हो सके अच्छी पोशाक पहनिए। बालों को सँवार कर रखिए। दर्पण में अपने को देखिए और अपने मुखमण्डल को ऐसा बनाइए जिस से रसिकता और मित्रता टपकती हो।

सद्व्यवहार और भद्रता ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें लोग सदा स्मरण रखते हैं।

अपनी एक ऐसी व्यक्तिगत रीति बनाइए जो लोगों को आप की पहचान का काम दे।

परन्तु इतना भिन्न न हो जाइए कि जिससे आप अजीब या सनकी देख पड़ें।

इस बात को जानिए कि आप जीवन से क्या लेना चाहते हैं और फिर उसका पीछा कीजिए। प्रतिदिन अपनी पड़ताल कीजिए और देखिए कि जो कुछ आप होना चाहते हैं उससे कहाँ और किस प्रकार आप में कमी है।

समूह के साथ बह जाना आसान है। समझदार बनिए, न्याय-संगत हूजिए, उदारचित्त हूजिए, परन्तु जब आप अनुभव करें कि आपको उत्तर में 'नहीं' कहना चाहिए, तो आप में 'नहीं' कहने का भी साहस होना चाहिए।

जो कुछ हो रहा है उसमें दिलचस्पी रखिए और सक्रिय भाग लीजिए। वार्तालाप और वादानुवाद में चुप बैठे न रह कर अच्छी तरह बोलिए।

कुछ लोग ऊँचा बोलने और आक्रमणशील रीति को ही भूल से व्यक्तित्व समझते हैं।

———

२२. उपहार कैसे देना चाहिए

चीन में एक शिष्टाचार है कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को कोई वस्तु भेंट करता है, तो, वह वस्तु चाहे कितनी ही बहुमूल्य क्यों न हो, उससे कहता है, 'यह एक तुच्छ सी वस्तु आपकी भेंट करता हूँ, आप इसे स्वीकार करें तो बड़ी कृपा होगी।' इससे उस उपहार का मूल्य बहुत बढ़ जाता है और लेने वाला दाता की असीम वदान्यता के लिए कृतज्ञता और उपकार के नीचे अपने को दबा पाता है।

कभी-कभी एक मनुष्य से उपहार लेने में जितनी प्रसन्नता होती है उतनी दूसरे से लेने में नहीं होती। यह बात उस भाव पर जिससे कि वह उपहार दिया जाता है और देते समय दाता की मानसिक अवस्था पर निर्भर करती है! उदाहरण के लिए मान लीजिए कि जयन्त ने कहीं से सेबों की एक टोकरों मँगाई है।

वह कुछ सेब लेकर अपने पड़ोसी के पास जाता है और उन्हें देता हुआ कहता है, "ये कुछ सेब लीजिए, आप को मोल न लेने पड़ेंगे। इस समय बाजार में ये बहुत महँगे मिलते हैं। आप को बहुत मूल्य देना पड़ेगा और फिर शायद वे अच्छे भी न निकलें। मैंने ये कुल्लू से बढ़िया प्रकार के मँगाए हैं। बड़ी कठिनाई से मुझे मिले हैं। मेरे पास अधिक नहीं, हमारे अपने बच्चों के खाने जितने ही हैं। परन्तु मुझे निश्चय है कि आप आध दर्जन लेकर प्रसन्न हो जायेंगे।

"'खेद है कि मैं आपके लिए अधिक नहीं निकाल सकता। मेरे पास वस्तुतः अपने लिए भी काफी नहीं। परन्तु मैंने आप के लिए चुन कर सब से उत्तम निकाले हैं। सचमुच ही बड़े स्वादिष्ठ और गुणकारी हैं। आपके बच्चे इन्हें खा कर बड़े प्रसन्न होंगे। ये असली फ्रेञ्च सेब हैं। बैनन साहिब के बगीचे के हैं।"

इस उपहार को जयन्त का पड़ोसी रमेश कैसा अनुभव करेगा ? वह आभारी तो होगा परन्तु साथ ही थोड़ा घबराहट में भी पड़ जाएगा। यह बात प्रायः निश्चित है कि वह किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर सोचने लगेगा कि मैं इस उपहार को स्वीकार करूँ या न करूँ। जो भी हो वह यह नहीं चाहता कि जयन्त और उसके परिवार के लिए सेब कम हो जायँ। वह यही पसँद करेगा कि मैं आप किसी दिन अपने बच्चों के लिए बाजार से सेब खरीद लाऊँ। और छः सेब देने में जो बड़ा भारी आत्मत्याग किया जा रहा है उसके लिए अपने निकटवर्ती घर वाले पड़ोसी के आभार से बच जाऊँ।

रामलाल के पास भी कुछ अच्छे सेब हैं। परन्तु वह एक भिन्न चरित्र का व्यक्ति है। वह सेब उठाता है और अपनी लड़की के हाथ प्रेमकृष्ण के घर भेज देता है। वह कहला भेजता है कि मेरे पास बहुत सेब हैं। यदि आप इन्हें स्वीकार नहीं करेंगे तो सड़ जाने से इनको घूरे पर फेंकना पड़ेगा। वस्तुतः ये कोई बहुत अच्छे नहीं। मेरी धारणा नहीं कि आप को ये पसँद आयेंगे। मैं तो उन्हें बाहर फेंकने जा रहा था। आप को यदि अच्छे न लगें तो आप उन्हें फेंक दीजिए।"

बेचारा प्रेमकृष्ण अब क्या करे ? या तो वह रामनाथ के साथ पूरी तरह सहमत हो जाय कि सेब सच-मुच निकम्मे और सड़ने वाले हैं, इन्हें लेना व्यर्थ है। परन्तु इस अवस्था में रामनाथ के हृदय पर भारी चोट लगेगी। या फिर वह लँबी-चौड़ी बातें करके रामनाथ को विश्वास कराए कि उसके सेब वस्तुतः बहुत बढ़िया हैं, और कि जितने भी सेब मैंने आज तक देखे हैं, उनमें ये सर्वोत्तम हैं, और इस प्रकार अपने पड़ोसी में विश्वास की कमी को अतिशय तथा झूठी प्रशंसा से सहारा देकर खड़ा करे।

प्रभात और मदन का सम्बन्ध इससे कहीं अधिक सुकर तथा सुखदायक है 'वे दोनों सचाई और अकपटता से काम लेते हैं। एक दूसरे को सच्ची-सच्ची बात जताते हैं।

"मदन, क्या आप ये कुछ सेब स्वीकार करने की कृपा करेंगे? मेरे पास थोड़े से रह गए हैं। आशा है, ये खासे स्वादिष्ट निकलेंगे। आप इन्हें पसंद करेंगे।"

''क्यों, यह तो आपकी बड़ी कृपा है। हाँ, ये काफी अच्छे दीखते हैं। मैं और मेरे बच्चे इन्हें खा कर बड़े प्रसन्न होंगे। आपका बहुत-बहुत धन्यवाद है।"

कोई उपहार ईमानदारी के साथ, न तो उसकी बहुत अधिक प्रशंसा करके और न उसे बहुत अधिक घटिया बता कर, देना कितना आसान है! दाता का आभार मानते और हृदय से अनुभव किया जाने वाला धन्यवाद देते हुए उपहार का मनोहरता-पूर्वक ग्रहण करना कितना सरल है! विना पहले से तैयारी किए ग्रहण करना उतना ही अपमान-जनक है

जितना कि भावना में बह कर लेना। अकपटता ही सुख-पूर्ण मध्य मार्ग है।

यदि कोई दूकानदार अपनी दूकान में से साबुन की टिकियों का डिब्बा बेचता है, तो आप एक ग्राहक के रूप में अपनी जेब में से बटुआ निकालते और पैसे देकर उसका मूल्य चुका देते हैं। इसी प्रकार यदि आपका कोई मित्र अपनी हितैषणा के भाण्डार में से, प्रेम के चिह्न के रूप में, आपको कोई उपहार भेंट करता है तो जितनी अनुकम्पा उसने दिखलाई है उसके समानानुपातिक धन्यवाद देकर आप उसका ऋण चुकाने के लिए समान रूप से उद्यत होंगे।

मेरे एक मित्र ने मुझे पायजामे के लिए बहुत बढ़िया गरम कपड़े का टुकड़ा उपहार में देना चाहा। उनके उस बहुमूल्य उपहार का आभार सहन करना मुझे कठिन प्रतीत होता था। मैंने विनय-पूर्वक उनसे कहा, "भाई देवीचन्द जी, आपकी बड़ी कृपा है जो आप मुझ पर इतना स्नेह रखते हैं; परन्तु मेरे पास पहले ही गरम पायजामे बहुत हैं, इसलिए मुझे इस कपड़े की आवश्यकता नहीं। आप इसे अपने ही किसी काम में ले आइए।"

वे बोले—"मैंने धारीवाल फेक्टरी से अपने व्यापार के लिए यह कपड़ा बनवाया था। यह इतना अच्छा बना कि इसका एक पायजामा मैंने भी अपने लिए बनवा लिया है। आप मेरे मित्र हैं। मैं जानता हूँ, आपको कपड़े की कमी नहीं। परन्तु यदि आप भी अपना पायजामा बनवाने के लिए मेरा यह वस्त्रखण्ड स्वीकार कर लें तो मुझे बहुत प्रसन्नता

होगी। मैं अपनी प्रसन्नता के लिए ही यह आपको भेंट करना चाहता हूँ।"

भाई देवीचन्द जी के इन शब्दों में से उनकी निष्कपटता टपक रही थी। मुझे कृतज्ञता के भाव के साथ उनके उस उपहार को स्वीकार करना ही पड़ा।

मनोहर रीति से देने और मनोहर रीति से लेने के लिए व्यवहार की दो बहुत ही साधारण विधियों को प्रयोग में लाने की आवश्यकता है! अकपटता और विनय।



२३. मित्र बनाने के गुर

मित्र ढूंढने का यत्न करने की बजाय आप अच्छा मित्र बनना अपना लक्ष्य बनाइए। लेने के स्थान में देने का भाव अपने में विकसित कीजिए।

निष्कपट हूजिए। जब आप कोई वचन दें तो उसे पूरा करने में कोई कसर उठा न रखिए। किसी भी कष्ट या असुविधा के डर से अपना वचन झूठा न होने दीजिए। जब संयोग मिले तो किसी की प्रशंसा करने से न चूकिए। दूसरे लोगों को महत्त्वपूर्ण अनुभव कराने का यत्न कीजिए। अपने गौरव पर मत अड़िए अर्थात् दूसरे लोगों पर जानबूझ कर अपनी बहादुरी की छाप जमाने का यत्न न कीजिए।

दूसरों को उनके अपने विषय में बातें करने के लिए उत्साहित कीजिए। उनके दृष्टिकोण को समझिए। एक सहानुभूति-पूर्ण श्रोता बनने की कला में निपुण बनिए।

लोगों की निन्दा करने की प्रवृत्ति यदि आप में है तो उसे रोकिए। दूसरों के सम्बन्ध में बातें करते समय जहाँ तक हो सके उनके उन सद्गुणों और रुचिर बातों की ही चर्चा कीजिए जिनका ज्ञान आप को है।

अपने में सच्ची प्रसन्नता-पूर्ण मुस्कान का विकास कीजिए। प्रत्येक से इस प्रकार "नमस्ते" कहिए, मानो आप सच्चे हृदय से कह रहे हैं।

जीवन के प्रति सदा आशावादी दृष्टिकोण रखिए। कोई भी मनुष्य ऐसे रोनी सूरत व्यक्ति से मित्रता करना पसन्द नहीं करता जो सदा शिकायतें ही किया करता और दुखड़े ही सुनाया करता है।

दूसरे लोगों पर अपने कष्टों और समस्याओं का भार लादने से बचिए। पुराने मित्रों को न भूलिए। उनसे मित्रता निभाइए। परन्तु मित्रों पर केवल अपना ही अधिकार रखने का यत्न न कीजिए। आपका कोई मित्र जब किसी दूसरे से मित्रता करे, तो उससे रुष्ट होना मूर्खता है।

ऐसे मनोरंजन तथा सामाजिक काम चुनिए जिन में आप को लोगों से मिलने के प्रचुर अवसर मिलें।

---

२४. नरक और स्वर्ग के चित्र—१

काम का बोझ

नरक

पत्नी—बस ! बाहर से घूमघाम कर आये कि बैठ गये बाजा लेकर। दिन भर बाहर रहने पर भी दिल नहीं बहल पाता कि घर में आते ही दिल बहलाव की सूझती है ? इधर दिनभर काम में जुती जुती थक जाती हूँ। यह नहीं होता कि पाँच मिनिट काम में हाथ बटाओ।

पति—किस काम में हाथ बटा दूँ ? चूल्हा फूंकूँ ? बर्तन मलूँ ? दिनभर बैल सा जुत कर कमाई करूँ, बाजार से बैल सा लदकर सामान लाऊँ, केवल उसे पका कर खाने-खिलाने का भी काम तुमसे नहीं होता ? बाहर जुतूं, लदकर आऊँ, तो भी पाँच मिनिट विश्राम नहीं। यहाँ भी आकर जुतूँ। तुम दिनभर पैर पसारे सोती रहो। जब मैं थक कर आऊँ तो जरा से काम में मुझे भी जोतो।

पत्नी—मैं दिनभर सोती रहती हूँ ? अँधेरा रहते ही उठ कर काम में लग जाती हूँ और तुम्हें चराकर विदा करने के बाद भी पहर भर बासन-बर्तन आदि में लगा रहना पड़ता है। इतने में मुझे जितने घंटे काम करना पड़ता है उतने घण्टे तो तुम्हें बाहर काम नहीं करना पड़ता।

पति—दो घण्टे का काम तुम दस घण्टे में करो, तो इसके

लिये कोई क्या करे ? मैं न रहूँ तब पड़ौसिनों से गप-शप करना या पैर पसारे सोना और जब मैं आजाऊँ तब जरा जरा से काम के लिए आह कराह मचा देना ! तुम्हारी इन आहों के मारे न खाने में स्वाद रहता है, न घर में बैठने को जी चाहता है।

पत्नी—ठीक है, मेरे खाने में विष मिला रहता है तो मेरे हाथ का न खाया करो ! होटलों में खाया करो। फिर घर किस लिए बसाया था ?

पति—झख मराने के लिए। ऐसा क्या मालूम था कि देवी जी ऐसी निकलेंगी। उन्हें पति नहीं बैल की जरूरत है जो सदा जुता करे और कैसा भी घास खा लिया करे।

पत्नी—तो कौन कहता है,तुमसे घास खाने के लिए? न मुझे घास खिलाना है, न खाना है। आग लगे इस जिंदगी पर।

(पत्नी बर्तन फेंक देती है, चूल्हे में पानी डाल देती है)

पति—अब जिन्दगी में क्या आग लगेगी ? आग तो उसी दिन लग गई जिस दिन शादी हुई थी।

(बड़बड़ाता हुआ घर के बाहर चला जाता है। दोनों नरकाग्नि में जलने की वेदना का अनुभव करने लगते हैं।)

स्वर्ग

पत्नी—यह क्या करने लगे ? दिनभर काम में जुते-जुते आये, और आते ही शाक बनाने बैठ गये। घड़ी भर विश्राम तो करो।

पति—यह विश्राम ही तो है। जिस काम से थक कर आया हूँ वही काम थोड़े ही कर रहा हूँ ? मुर्दे की तरह पड़ जाना विश्राम नहीं है। श्रम का बदलना ही श्रम का विश्राम है।

पत्नी—यह तत्त्वज्ञान मैं क्या समझूँ ! मैं तो मूर्ख हूँ सीधी सादी बात जानती हूँ।

पति—पत्नी जब मूरख बनती है तब उसकी सुन्दरता दुगुनी हो जाती है। इसीलिए संस्कृत में मुग्ध शब्द का अर्थ मूर्ख भी है और सुन्दर भी।

पत्नी—मैं तो संस्कृत सब भूलभाल गई। पर यह मोटी बात समझती हूँ कि पति दिनभर काम करके आये और आते ही उसे काम में जोत देना पत्नी के लिए लज़्जा की बात है।

पति—तो क्या तुम लज्जाती हो ?

पत्नी—नहीं तो क्या ?

पति—तब तो बहुत अच्छी बात है। जब पत्नी लजाती है तब उसकी सुन्दरता चौगुणी हो जाती है।

पत्नी—आज यह सुन्दरता मापने का थर्मामीटर कहाँ से पा गए ?

पति—यह थर्मामीटर बाजार में नहीं मिलता। यह तो पत्नी ही दिया करती है।

पत्नी—हारी बाबा तुम से। अच्छा तो यह शाक-भाजी रहने दो। रेडियो लगा लो। इस समय रेडियो पर अच्छा नाटक आने वाला है। उससे तुम्हारा दिल बहलेगा और मैं भी सुनती जाऊँगी !

पति—किस बात का नाटक है ?

पत्नी—घर-गृहस्थी की बातों का ही होगा, कदाचित् पति-पत्नी की बातों का ही हो ।

पति—देखो रानी, जब हाथ में असली गुलाब हो तब कागज का नकली गुलाब सूँघने की इच्छा नहीं होती । जब हम पति-पत्नी बैठे हैं, प्रेम से बातें करते हैं, एक दूसरे के काम में सहायता करके पूरक बन रहे हैं, इस प्रकार जब सच्चे नाटक का आनन्द लूट रहे हैं तब नकली नाटक में क्या आनन्द आसकता है ?

पत्नी—तुमसे जीतना बहुत कठिन है ।

पति—तो जीतना चाहती हो ?

पत्नी—नहीं, इस हार में ही जीतने की अपेक्षा कई गुणा मिठास है ।

(दोनों मुसकराने लगे और उनके चेहरे दिव्य आनन्द से खिल गए)

—स्वामी सत्यभक्त जी के सौजन्य से ।

---

२५. नरक और स्वर्ग के चित्र—२

विमाता

नरक

विमाता—अरे ओ पोट्टा, अभी से पढ़ने को बैठ गया ? यह बाकी काम कौन करेगा ?

पुत्र—तुम करो और कौन करेगा ?

विमाता—मैं काम करूँगी ? और तू बैठा-बैठा हराम का खायगा ?

पुत्र—मैं किसी के बाप की कमाई नहीं खाता हूँ, अपने बाप की कमाई खाता हूँ ?

विमाता—बड़ा बाप वाला आया है। देखती हूँ, तेरा बाप कैसे खाने देता है ? यदि काम न करेगा तो चौके में घुसने न दूंगी। (बड़बड़ाती हुई) आप तो मर गई पर मेरी छाती के लिए यह बोझ छोड़ गई !

पुत्र—तुम्हें तो राज करने को बना बनाया घर मिल गया ! मेरी माँ ने जोड़-जोड़ कर घर बसाया और तुम ने आकर सब लूट लिया !

विमाता—तो अपनी माँ से कहा क्यों नहीं कि रस्सी से बाँध कर सारा घर ले जाती। और तुझे भी ले जाती !

पुत्र--देखेंगे, जब तुम मरोगी, तो अपने कितने बेटों को साथ लिये जाती हो !

विमाता—(दूसरे कमरे में बैठे हुए पति से) सुन रहे हो ? तुम्हारा लाडला कैसी-केसी बातें करता है। इसके रहते मैं इस घर में एक दिन भी नहीं रह सकती।

पति—(प्रवेश कर लड़के से) क्यों रे! ऐसा बकवाद क्यों करता है ? कान पकड़ कर निकाल दूंगा।

पुत्र—निकाल दो! कान पकड़ कर निकाल दो! जब मेरी माँ मर गई तब मेरे लिए रहा कौन ?

(रोने लगता है)

पति—(खिन्न होकर पत्नी से) तुम भी सबेरे से जरा-जरा-सी बात में झगड़ा मोल ले बैठती हो।

पत्नी—मैं झगड़ा ले बैठती हूँ ? सबेरे से काम में थोड़ी-बहुत मदद करने से तुम्हारा लड़का घिस जायगा ? जरा काम करने को कहा तो सौ गालियाँ सुना दीं। और तुम से कहा तो तुम भी मुझे ही डपटने आगये। अब बाप-बेटे मिलकर मेरी जान ही ले लो। इस फूटे भाग्य में इस नरक में ही आना बदा था। (सिर पीटती हुई दूसरे कमरे में चली जाती है।)

(पति ओंठ चबाता रह जाता है पर बोल कुछ नहीं पाता। आँखों में आँसू भर आते हैं)

स्वर्ग

विमाता—बेटा! झाड़ने की जल्दी क्या है ? मैं अभी झाड़ लेती हूँ। तू तो अपना काम कर।

बेटा—पढ़ते-पढ़ते थक गया हूँ माँ, इसलिए सोचा कि जरा झाड़ू ही लगा लूं।

विमाता—बातें बनाना तो कोई तुझ से सीख ले। क्या जीजी के समय में इसी तरह पढ़ते-पढ़ते थक जाता था?

बेटा—माँ ने ही तो इस प्रकार थकना सिखाया था, मां! मां कहती थी कि एक काम करते-करते देर हो जाय तो दूसरा काम करना चहिए, जिससे पहले काम की थकावट दूर हो जाती है।

विमाता—जीजी क्या थीं, देवी थीं। तभी तो तुझ सरीखा देवपुत्र मेरे लिए वरदान के रूप में छोड़ गईं।

बेटा—पर पहली माँ की तरह तुम भी न चली जाना, माँ!

विमाता—मैं क्यों चली जाऊँगी, मेरे लाल!

बेटा—मुझे अपने अभाग्य का डर लगा रहता है, मां! पहली माँ मुझ से खूब प्यार करती थी, इसलिए चली गई। अब तुम उससे भी अधिक प्यार करती हो, इसलिए डर लगता है कि तुम भी न चली जाओ।

विमाता—(दूसरे कमरे में बैठे हुए पति को लक्ष्य करके ज़रा जोर से) सुनते हो, यह मेरा बेटा मुझ से क्या कह रहा है?

पति—(प्रवेश कर) क्या कह रहा है?

विमाता—कहता है कि पहली माँ मुझ से प्यार करती थी इसलिए वह चली गई, अब तुम उससे भी अधिक प्यार करती हो तो तुम भी न चली जाना।

पति—(हँस कर) ठीक तो कहता है, तुम इतना प्यार क्यों करती हो?

विमाता—क्यों न करूँ ? जीजी को तो इसने गर्भ में रहते समय, पैदा होते समय तथा शैशव में भी काफी कष्ट दिया था। तब भी जीजी इतना प्यार करती थीं। मुझे तो इसने कोई कष्ट दिया ही नहीं। मुझे तो बिना किसी कष्ट के तैयार बेटा मिल गया। तब जीजी से अधिक प्यार क्यों न करूँ ?

पति—धन्य है तुम्हारे इस गणित को। ऐसा गणित तो वृहस्पति को भी नहीं आता होगा।

विमाता--वृहस्पति जी कोई माँ थोड़े ही हैं जो उन्हें माँ का गणित आ जायगा।

पति--(पुत्र से) तू माँ की तरफ से निश्चिन्त रह बेटा! तेरी माँ तुझ से इतना अधिक प्यार करती है कि तेरे पीछे वह यमराज को भी धक्का मार कर भगा देगी।

बेटा—ओ ! मेरी प्यारी माँ। (माँ से चिपट जाता है।)

विमाता—मेरे प्यारे बेटे ! (बेटे के सिर पर प्यार से हाथ फेरने लगती है। पति हर्ष के आँसू भरे हुए दोनों को देखता रहता है।)

—स्वामी सत्यभक्त जी के सौजन्य से
